ब्रह्म-अनुभूति

अणां तेल तिल मांय, वास जिमि पुहप विराजत।
रंग मजीठ सु रहत, सबद अरथादिक साजत ॥
वेळा सायर बसत, दारु मंझि अगनि दिखावत।
हविस मांझि पै होय, ऊख मधुरस उपजावत ॥
वळि दाहकता पावक विसै, साधूजण सोहै सहण।
ईसरो भणै य्यूंही अवसि, मो मन बसियो महमहण ॥

३७।२६८

भावार्थ—जिसप्रकार तुच्छकाय तिलों में मनोवंद तेल, पुष्पों में सुगन्धि, मजीठ में रंग, शब्दों में अर्थ, सागर में लहरें, काष्ठ में अग्नि, दूध में घृत, ईख में मधुर रस, अग्नि में दाहकता और साधुजनों में क्षमा— ये इनके स्वाभाविक प्रच्छन्न-गुण हैं अर्थात् दृष्टिगोचर नहीं होते हुए भी इनके सर्वांश में व्यापक हैं। भक्त ईशरदास कहते हैं कि मैंने अन्तर्हित परब्रह्म को ठीक इसीप्रकार व्यापक अनुभव किया है।

(साकरिया द्वारा सम्पादित अप्रकाशित 'हरिरस' से)

॥ ॐ ॥

॥ ज्ञानमेव पराशक्तिः ॥

राजस्थान-भारती

Journal of the Sadul Rajasthani Research Institute

भाग ३ | अंक १ | अप्रैल, १९५०

राजस्थान के नगर एवं ग्राम

(बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी के लगभग)*

[लेखक—डॉ० दशरथ शर्मा, अेम.अे., डी० लिट् ।]

आज से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति प्रायः वही रही होगी जो अब है। उसका बहुत सा भाग तब भी बालुका से आच्छादित, तरु रहित एवं निर्जल होने के कारण मरुदेश का नाम प्राप्त कर चुका था। यात्री उसके नाम से भयभीत थे, संस्कृतज्ञ इसे ऐसा देश मानते थे जिसमें प्राणी प्यास के मारे मर जायँ १। छोटी सेनाओं को राजस्थानी योद्धा प्रायः अपने बल और पराक्रम से नष्ट कर देते। बड़ी सेनायें अन्न और जल के अभाव में प्रायः स्वयं नष्ट हो जातीं। सोलहवीं शताब्दी में सूर सम्राट शेरशाह ने इस तथ्य का कटु अनुभव किया था। मारवाड़ पर आक्रमण कर उसे कहना पड़ा था, "अहो मैंने कितना अविवेकपूर्ण कार्य किया; बाजरे की एक मुट्ठी के लिए मैंने साम्राज्य को खो दिया होता।" इससे पूर्व भी अनेक विदेशी आक्रमणकारी इसी तरह दुःखी

*मुख्यतः चौहान साम्राज्य के ग्रामों का इस लेख में उल्लेख किया गया है।

१. म्रियन्ते प्राणिनोऽत्र पिपासयेति मरुः।

हो चुके थे। चौहाण कुमार अर्णोराज के समय गजनी की मुसलमानी सेना किसी अंश में युद्ध में नष्ट हुई; बाकी स्वयं परलोक पहुंची। "जो कार्य अजमेर के सिपाहियों के शस्त्राघातों से सिद्ध होता, वह तुरुष्कों के भारी लोह के कवचों ने स्वयं कर दिया। मरु की धूलि के बीच में अनेकों के प्राण प्यास के मारे निकल गये। अनेकों ने घोड़ों की गर्दनों पर तलवार चलाई और खून पिया, किन्तु प्यास के शान्त न होने से मर गये। कई मुसलमानों के मृत शरीर मरुस्थल की बालुका से स्वयं ढक गये। यह मानो वायु ने कृपापूर्वक उनका अन्तिम यवनोचित संस्कार किया था २।" अर्णोराज के पुत्र विग्रहराज चतुर्थ के समय में भी मुसलमानी सेना की ऐसी ही स्थिति हुई होगी। मरुदेश के सम्राट विग्रहराज चतुर्थ को इस बात का गर्व था कि उसने म्लेच्छों का नाश कर आर्यावर्त को वास्तव में आर्यावर्त बना दिया था। ३

हमारे नदी, नाले, पहाड़ भी प्रायः अभी के समान थे। पूर्वी राजस्थान अधिक और पश्चिमी कम सजल था। किन्तु बहुत सम्भव है कि बनास, लूणी खारी, सूकड़ी, चम्बल, घग्गर आदि नदियों में अब से कुछ अधिक जल रहा हो। जंगली भाग भी, विशेष कर पर्वतों में, अब से कुछ अधिक था। तत्कालीन वर्णनों से प्रतीत होता है कि अर्बुद प्रदेश अब से कहीं अधिक हरा भरा था। अनेक प्राचीन ग्राम नष्ट हो चुके हैं, संभव है पचास साठ फीट बालू के नीचे छिपे हों। कम से कम यह निश्चित है कि बीकानेर राज्य का उत्तरी भूभाग किसी समय अब से कहीं अधिक समृद्ध एवं सस्य-सम्पन्न था।

२, दोश्शालिनामजयमेरवाणां यल्लोहघातैः करणीयमासीत्।
भारायमाणैर्जनिवर्मलोहैस्तदन्वभूवन्बहवस्तुरुष्काः ॥४॥
पुरोगतानामसवो निरीयुः पिपासया ये मरुधूलिमध्ये।
तैरेव सा . . . . ॥५॥
. . . . सुखेन पाथेयमिवात्तवद्भिः ॥६॥
मरुस्थलीवालुकया व्यधत्त कांश्चिद्-विपन्नांल्लुठतः पृथिव्याम्।
संस्कारमात्मोचितमन्तकाले प्रवर्तयन्तो कृपयेव वात्या ॥ ७ ॥
(पृथ्वीराजविजय सर्ग ६)

श्लोक ६ त्रुटित है। इसका अर्थ जोनराज की टीका के आधार पर दिया गया है।

३. आर्यावर्तं यथार्थं यश्च कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभिः
देवश्री शाकम्भरीन्द्रो विजयते वीसलः क्षोणिपालः ॥

राजस्थान में भारत के अन्य जनपदों की अपेक्षा नगरों एवं ग्रामों की संख्या स्वभावतः कुछ कम थी, किन्तु नगण्य नहीं। राजस्थान उस समय भी शौर्यस्थली एवं तीर्थस्थली था। अन्य स्थानों के समान यहां भी राज दरबारों, दुर्गों, तीर्थस्थलों एवं व्यापार तथा सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों के निकट बड़े २ नगर बस चुके थे। अजमेर, नाडोल, चित्तौड़, रणथम्भोर, जालोर केवल राजधानियां ही नहीं, आक्रान्ताओं से बचने के लिये दृढ़ स्थान भी थे। चौहाणों की पुरानी राजधानी सांभर थी। अजयराज ने इसे छोड़ कर अजमेर में अपनी राजधानी की स्थापना की थी। इसका मुख्य कारण संभवतः यही था कि चौहान राज्य में मुसलमानों के हमलों का मुंहतोड़ जवाब देने के लिये इससे बढ़कर और कोई स्थान न था अर्णोराज के समय इस नगर ने अच्छी उन्नति की। अपनी पक्षपात रहित नीति से उसने सब दर्शनावलम्बियों को प्रसन्न किया था। खरतरगच्छ के विशाल मन्दिर के लिये इसी राजा ने भूमि प्रदान की थी। ४ सत्यपुर, कन्यानयन भिल्लमाल, फलवर्द्धिका, एवं अर्बुदपर्वत पवित्रस्थान थे, यद्यपि व्यापारिक एवं सैनिक दृष्टि से भी उनमें से कुछ पर्याप्त महत्त्वपूर्ण थे। भटिंडा, भटनेर, हांसी, सरसा, जबरदस्त दुर्ग थे। राजस्थान पर आक्रमण करनेवालों के लिये यह आवश्यक था कि वे इन्हें हस्तगत कर आगे बढ़ें। इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण नागौर का महान् दुर्ग था। चौहाणों की इसे उत्तरी राजधानी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। चन्द्रावती, आघाट, मांडलगढ़ आदि भी इसी प्रकार राजस्थान के प्रसिद्ध स्थान थे।

श्री जिनपालादि ग्रथित खरतरगच्छपट्टावली में निम्नलिखित अन्य स्थानों का उल्लेख है:—

१. अबोहर ५   २. बब्बेरक ६

---

४. खरतर गच्छपट्टावली (जिनपालादिरचित पृष्ठ १६)

५. अब भी फिरोजपुर जिले में पूर्वी पञ्जाब का अच्छा नगर है। इब्नबतूता के समय में भी पर्याप्त समृद्ध स्थान था।

६. "ललित विग्रहराज नाटक" में भी इसका वर्णन है। विग्रहराज चतुर्थ के समय मुसलमानी सेना इस नगर तक पहुंच चुकी थी। "प्रबन्ध चिन्तामणि" में इसी नगर का नाम बम्बेरा है। डाक्टर कीलहार्न ने इसे अजमेर से ४७ मील दक्षिण पूर्व का बघेरा नाम का स्थान माना है। किन्तु यह भूल है। वास्तव में यह खेतड़ी संस्थान का बब्बेरा नाम का स्थान है।

३.	बाहडमेरु	७	१०.	जैसलमेर	१४
४.	दरिद्रेरक	८	११.	करहेटक	१५
५.	गुडहा	९	१२.	कासह्रद	१६
६.	झुंझनू	१०	१३.	खेटक	१७
७.	अचलेश्वर	११	१४	कोसवाणा	१८
८.	बरडिया	१२	१५	माण्डव्यपुर	१९
९.	डिंडियानक	१३	१६	मेड़ता	२०

७. इसके लिये 'वाग्भटमेरु' नाम भी प्रयुक्त किया गया है। यह जोधपुर का बाड़मेर नाम का स्थान है।

८. बीकानेर राज्य का वर्तमान ददरेवा नाम का स्थान। यह बीकानेर स्टेट रेल्वे के सादूलपुर जंक्शन से कुछ दूरी पर है।

९. वर्तमान गूढ़ा। अब भी सांभर के निकट वर्तमान है।

१०. जयपुर राज्य का वर्तमान झूंझणु। मुसलमानी काल में भी नवाबी के कारण पर्याप्त विख्यात रहा है।

११. अचलेश्वर का प्रसिद्ध स्थान अर्बुद पर्वत पर है। परमारों के समय यह अच्छा तीर्थस्थान का रूप ग्रहण कर चुका था, चौहानों के समय यह और प्रसिद्ध हुआ, और महाराणा कुम्भा ने कुछ परवर्ती काल में इसे दृढ़ दुर्ग का रूप दिया। पुराणों में इसके महत्व का पर्याप्त वर्णन है।

१२. इसी नाम से प्रसिद्ध है। बरडिया ओसवाल काफी प्रसिद्ध हैं।

१३. जोधपुर राज्य का वर्तमान डीडवाना। भोज प्रतिहार के संवत् ९०० के लेख में भी इसका उल्लेख है।

१४. वर्तमान जैसलमेर। परम्परा से इसे सम्वत् १२१२ में बसा हुआ मानते हैं। खरतरगच्छ पट्टावली में संभवतः सम्वत् १२४४ में जैसलमेरु का प्रथम उल्लेख है। इस विषय पर 'राजस्थानी साहित्य' में मेरा लेख देखें।

१५. यह मेवाड़ राज्य में करेड़ा नाम का स्थान है। यह जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है।

१६. वर्तमान कायद्रा। यह बी.बी.सी. आई. रेल्वे के कीवरली स्टेशन से चार मील उत्तर में है।

१७. जोधपुर राज्य का वर्तमान खेड़। यह बालोतरा से पांच मील की दूरी पर है।

१८. कोसाणा। इसका 'जैतसी रो छन्द' में भी उल्लेख है।

१९. वर्तमान मंडोर (जोधपुर राज्य)। यह जोधपुर शहर से कुछ दूरी पर है और पहले पड़िहारों और बाद में राठोड़ों की राजधानी था। बाउक के संवत् ८९४ के और सूंधा के संवत् १३१९ के शिलालेखों में इसका उल्लेख है। यह राजस्थान के मुख्य नगरों में एक था।

२०. अब भी इस नाम से प्रसिद्ध है।

१७	नाना	२१	२६	पल्हूपुर	३०
१८	नवहर	२२	२७	पुष्करिणी	३१
१९	पाली	२३	२८	रामशयन	३२
२०	खट्टकूप	२४	२९	सिरियाणक	३३
२१	कोरएटक	२५	३०	विक्रमपुर	३४
२२	लाटह्रद	२६	३१	रत्नपुर	३५
२३	मरुकोट	२७	३२	लोद्रवा	३६
२४	मुद्रस्थल	२८	३३	शम्यानयन	३६अ
२५	नरभट	२९			

२१. जोधपुर राज्य में बी. बी. सी. आई. रेल्वे का नाना स्टेशन।

२२. बीकानेर राज्य का वर्तमान नोहर। यहां का एक प्राचीन शिलालेख बीकानेर म्यूजियम में वर्तमान है।

२३. इसी नाम से प्रसिद्ध जोधपुर राज्य का नगर।

२४. जयपुर राज्य का वर्तमान खाटू, प्राचीन अवशेषों से इसकी महत्ता सिद्ध है।

२५. वर्तमान कोरटा। यह जोधपुर राज्य के सांडेराव कस्बे से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है।

२६. जोधपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिम में।

२७. मरोट। अपने समय का प्रसिद्ध स्थान एवं जोहियों की राजधानी। विग्रहराज चतुर्थ का मामा सिंहबल किसी समय मरोट का शासक था।

२८. वर्तमान मूंगथल।

२९. वर्तमान नरहड। जयपुर राज्य के पिलाणी नगर से विशेष दूर नहीं है। यहां से विग्रहपाल चतुर्थ का संवत् १२१८ का शिलालेख मिला है (देखिये "ऐनल्स ऑफ दी भाँडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट" का रजतोत्सव ग्रंथ)।

३०. बीकानेर राज्य का पल्लू ग्राम। यहां से प्राप्त जैन सरस्वती की मूर्ति बीकानेर गोल्डन जुबिली म्यूजियम में वर्तमान है। इतनी सर्वाङ्गसुन्दर मूर्तियां विरल हैं।

३१. जोधपुर राज्य का वर्तमान पोकरण।

३२. जोधपुर राज्य का वर्तमान रामसेन। सूंधा के शिलालेख में इसका उल्लेख है।

३३. पश्चिमी मारवाड़ का वर्तमान सिराणा।

३४. जैसलमेर राज्य का वर्तमान बीकमपुर। किसी समय अब से कहीं अधिक समृद्ध और सम्पत्तिशाली सेठों का निवासस्थान था।

३५. जोधपुर राज्य का इसी नाम से प्रसिद्ध स्थान। यह चौहाणों की एक राजधानी थी। सूंधा के संवत् १३१९ के शिलालेख में भी इसका उल्लेख है।

३६. जैसलमेर राज्य का प्राचीन नगर। जैसलमेर से पूर्व यह भाटियों की राजधानी थी।

३६अ. जोधपुर राज्य का वर्तमान सिवाणा।

तत्सामयिक चौहाण–शिलालेखों के आधार पर हम इस सूची में निम्नलिखित नाम और जोड़ सकते हैं।

१	अजयपुरी ३७		९	दारीजी	४५
२	बदरी ३८		१०	देवसूरि	४६
३	भट्टुट्टपद्र ३९		११	धवगर्त	४७
४	भीटलवाटक ४०		१२	घोराटावार्पिका	४८
५	वृद्धपत्र ४१		१३	जयपुर	४९
६	छेछड़िय ४२		१४	कणसुवम्	५०
७	भडेउवा ४३		१५	कर्दमवारक	५१
८	छत्रधारा ४४		१६	केलिकूपक	५२

---

३७. जोधपुर राज्य का वर्तमान पोकरण-फलोदी।

३८. संभवतः बोरली। नाडलाई से आठ मील उत्तर दिशा में है।

३९. जोधपुर राज्य के बाली नगर से दस मील दक्षिण में है। इसका वर्तमान नाम ट्रूंद है।

४० नाडोल प्रदेश में था।

४१. जोधपुर राज्य के जालोर परगने का वर्तमान बुतंदा।

४२. वर्तमान छेछली। यह जोधपुर राज्य के सेवाड़ी कस्बे से चार मील उत्तर की र्फ है।

४३. वर्तमान बबवा। जोधपुर राज्य के बाजराई कस्बे से पांच मील दक्षिण पश्चिम में है।

४४. सम्वत् १० ३० के हरस के शिलालेख में इसका उल्लेख है।

४५. नाडलाई द्वादश का एक गाँव।

४६. जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ प्रान्त में वर्तमान देसूरी।

४७. वर्तमान धोड़। मेवाड़ राज्य में जहाजपुर से लगभग सात मील की दूरी पर पत है।

४८. वर्तमान घोटार्सी। प्रतापगढ़ रियासत का अब छोटासा गांव है। किसी समय प्रीस समृद्ध रहा होगा।

४९. सम्भवतः इसकी स्थिति जयपुर राज्य में ही थी। वर्तमान जयपुर से सर्वथा भिन्न।

५०. नाडलाई-द्वादश का एक गांव।

५१. उपर्युक्त जयपुर विषयका एक ग्राम।

५२. सपादलक्ष का एक ग्राम। इसका उल्लेख हरस के शिलालेख में है।

१७	लालराई	५३	२६	मदड	६२
१८	मद्दडी	५४	२७	मद्रपुरिश्रक	६३
१९	घालोप	५५	२८	महानाल	६४
२०	धवलपुरी	५६	२९	मउवडी	६५
२१	हरवन्दार	५७	३०	मेद्रंचा	६६
२२	झपरा	५८	३१	मोराकुरी	६७
२३	कन्हपल्लिका	५९	३२	नड्डुलडागिका	६८
२४	कविलाड़ा	६०	३३	निंबड़िका	६९
२५	किरातकूट या किराटकूप	६१	३४	पिन्छवल्ली	७०
			३५	पुष्कर	७१

५३. जोधपुर राज्य में अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

५४. जोधपुर राज्य में सेवाड़ी के निकट वर्तमान था।

५५. जोधपुर राज्य में इसी नाम से वर्तमान है।

५६. वर्तमान धोलपुर। इसका प्रथम निश्चित उल्लेख ईसा की आठवीं शताब्दी का है।

५७. नाडलाई द्वादश का एक ग्राम।

५८. मंडोर का निकटस्थ झंवर ग्राम।

५९. सरहकोट्ट अर्थात् सरगोत विषयक एक गांव।

६०. नाडलाई द्वादश का एक गांव।

६१. जोधपुर राज्य का वर्तमान किराडू। यह पंवारों का राज्य रहने के बाद चौहानों के हाथ आया।

६२. नाडलाई द्वादश का एक गाँव।

६३. सपादलक्ष का ग्राम। हरस के सम्वत् १०३० के शिलालेख में इसका उल्लेख है।

६४. मेवाड़ राज्य का वर्तमान माल।

६५. नड्डुलाई द्वादश का एक गांव।

६६. सेवाड़ी के निकट।

६७. बिजोली (मेवाड़ राज्य) के निकट एक ग्राम जिसे पृथ्वीराज तृतीय के पिता सोमेश्वर ने बिजोली के पार्श्वनाथ मन्दिर को प्रदान किया था।

६८. वर्तमान नाडलाई जोधपुर राज्य।

६९. वर्तमान नीमडा। जयपुर राज्य के सीकर संस्थान में स्थित हर्षनाथ के मन्दिर से ४½ मील की दूरी पर।

७०. तृतीय ओझा अभिलेख में उल्लिखित। श्री त्रिपुरुष के मन्दिर को सं० ११७१ में दिया गया।

७१. अजमेर के निकट प्रसिद्ध तीर्थ। विक्रम सम्वत् के प्रचलन से पूर्व भी इसकी सत्ता सिद्ध है। राजस्थान का यह सब से प्रसिद्ध तीर्थ है।

३६	समरपुर	७२	४६	संडेरक	८२
३७	सणपुर	७३	४७	सरहकोट्ट	८३
३८	संकराणक	७४	४८	सिवा	८४
३९	मंगलानक	७५	४९	सुजेरा	८५
४०	मयूरपद्रक	७६	५०	तंतुट्टी	८६
४१	नाडड	७७	५१	वलही	८७
४२	पाद्रडा	७८	५२	वीसलपुर	८८
४३	प्रह्लादकूप	७९	५३	सोनाणाम	८९
४४	राटहूद	८०	५४	सूराचन्द	९०
४५	सिंहगोष्ठ	८१	५५	तूणकूपक	९१

७२. जालोर के चौहाण राजा समरसिंह ने बसाया।

७३. सिरोही रियासत में वर्तमान है।

७४. हर्षनाथ के शिलालेख में उल्लिखित सपादलक्ष का एक ग्राम।

७५. वर्तमान मंगलाना। जोधपुर राज्य में मरोठ से १६ मील पश्चिम में है।

७६. खदकूप विषयक एक गांव।

७७. नड्डुलाई द्वादश का एक ग्राम।

७८. सेवाड़ी के निकट एक ग्राम।

७९. संभवतः बीकानेर राज्य का पलू। राजपूताना म्यूजियम की मुद्रित चौहाण प्रशस्ति में उल्लिखित।

८०. सूंधा के लेख में राटहृद के नाम से उल्लिखित। नैणसी की ख्यात के अनुसार सांचोर के निकट स्थित।

८१. जयपुर राज्य का वर्तमान सिवोट।

८२. जोधपुर राज्य का वर्तमान संडेराव।

८३. जोधपुर राज्य में मरोठ के निकट वर्तमान सरगोठ।

८४. जोधपुर राज्य का वर्तमान सेओ।

८५. नड्डुलाई-द्वादश का एक गांव।

८६. अजमेर मेरवाड़े का वर्तमान तंतोटी।

८७. वर्तमान वाली (जोधपुर राज्य)

८८. जयपुर राज्य में स्थित।

८९. नड्डुलाई-द्वादश का एक ग्राम।

९०. जोधपुर राज्य में वर्तमान।

९१. सीकर संस्थान का वर्तमान तूणु।

५६ हस्तिकुण्डी ९२ ५७ विद्युत्वल्ली (बिजोल्या)

निम्नलिखित नगरों और ग्रामों के भग्नावशेषों से सिद्ध है कि ये संवत् ११०० या ११०० के लगभग वर्तमान थे—

१. जहाजपुर (मेवाड़)
२. जाहोली (मेवाड़)
३. रायसीसर (बीकानेर राज्य)
४. वसी-वरसिंघसर (बीकानेर राज्य)
५. मोरखाणा (बीकानेर राज्य)
६. जांगलकूप (वर्तमान जांगलू, बीकानेर राज्य)
७. भादला (बीकानेर राज्य)
८. सारंगसर (बीकानेर राज्य)
९. द्रोणपुर (बीकानेर राज्य)
१०. चर्लू (बीकानेर राज्य) ९३
११. रिणी (बीकानेर राज्य)
१२. लोहारी (मेवाड़)
१३. कीलसरिया (जोधपुर राज्य)
१४. रेवासा (जयपुर राज्य)
१५. आंवलदा (मेवाड़)
१६. बलवन (कोटा राज्य)
१७. केकिन्द (जयपुर राज्य)
१८. वाणनेरा (जोधपुर राज्य)
१९. लास (सिरोही राज्य)
२०. चोहटन (जोधपुर राज्य)
२१. वीठू (जोधपुर राज्य)

---

९२. जोधपुर राज्य का वर्तमान हथूंडी

९३. चर्लू के शिलालेखों पर 'राजस्थान भारती' प्रथम खण्ड में मेरा लेख देखें।

तत्कालीन ग्रन्थों के आधार राजस्थान के ग्रामों और नगरों की सूची में ये नाम और बढ़ाये जा सकते हैं—

१.	आम्रपुर	९४	१०.	सोजत	१०३
२.	भाद्राजन	९५	११.	टोडा	१०४
३.	गुडपुर	९६	१२.	हर्षपुर	१०५
४.	जगरा	९७	१३.	नगर	१०६
५.	झाइन	९८	१४.	नरानयन	१०७
६.	कैलवाडा	९९	१५.	उपकेश	१०८
७.	खंडिल्ल	१००	१६.	पृथ्वीपुर	१०९
८.	पूगल	१०१	१७.	गुड्डगयपु	११०
९.	सिराणा	१०२	१८.	कुशमानपुर	१११

९४. वर्तमान आमेर।

९५. जोधपुर राज्य में अवस्थित।

९६. ठीक स्थिति अनिश्चित है। संभव है राजस्थान से बाहर भी हो।

९७. हम्मीर चौहाण के राज्य की उत्तर सीमा के निकट था।

९८. रणथंभोर के निकट दृढदुर्ग। इसे डाक्टर हेमचन्द्ररायने उज्जैन मानने में भूल की है।

९९. इसका दूसरा नाम कपिलपाटक है।

१००. संभवतः खंडेल।

१०१. बीकानेर राज्य में वर्तमान।

१०२. जालौर के निकट। संभवतः सिरियाणक इसी का संस्कृत रूप है।

१०३. उल्लेख कान्हडदे प्रबन्ध से।

१०४. उल्लेख कान्हडदे प्रबन्ध से, सोजत और टोडा का उल्लेख एक प्रकार से परवर्ती है, किन्तु १३०० वि० सं० के लगभग इनकी उपस्थिति सम्भव है।

१०५. सीकर संस्थान का हरस।

१०६. जोधपुर राज्य में।

१०७. सांभर झील के निकट।

१०८. जोधपुर राज्य का ओसिया।

१०९. अजमेर का उपनगर।

११०. देखो पाटण भण्डार की सूची पृ० १२६।

१११. सम्भवतः कोशवाणा का संस्कृत रूप

१९.	शुद्धदन्ता	११२	२५.	प्रह्लादनपुर	११८
२०.	नदकूलवती	११३	२६.	बीजापुर	११९
२१.	शतपत्रिका	११४	२७.	नांदिभवर	१२०
२२.	नागह्रद	११५	२८.	पूर्णवल्ल	१२१
२३.	आघाट	११६	२९.	खास	१२२
२४.	वऊणा	११७			

राजस्थान के नगरों और ग्रामों की यह सूची पूर्ण होने का दावा नहीं करती। तीर्थमालाओं, पट्टावलियों और अन्य साहित्य ग्रन्थों के आधार पर इनमें कई नाम जोड़े जा सकते हैं। अवकाश एवं सामग्री मिली तो फिर कभी दूसरी सूची इसके परिशिष्ट रूप में प्रकाशित की जायगी। अब केवल नगरों और ग्रामों के स्वरूप के विषय में दो चार शब्द पाठकों के सम्मुख रख कर हम लेख को समाप्त करेंगे।

तत्कालीन शिल्पग्रन्थों से हमें ज्ञात है कि महत्त्वपूर्ण स्थानों के चारों तर्फ प्रायः ईंट या पत्थर की दीवार रहती। इसको बल देने के लिये मिट्टी का वप्र रहता। बाहर की तर्फ परिखा और खाई होती, और शत्रु के मार्ग को और दुर्गम बनाने के लिये प्रायः कंटीले वृक्षों के जंगल लगा दिये जाते। प्राकार के साथ साथ नगर के चारों तर्फ गैलेरी के रूप में एक मार्ग रहता। शहर के बीचों-बीच से समकोण बनाते हुए प्रायः दो बड़े मार्ग रहते। इन्हीं का नाम घण्टा-पथ

---

११२. कोशवाणे से मेवाड़ के मार्ग में।

११३. ,, ,,

११४. मेवाड़ का एक गांव।

११५. मेवाड़ का नागदा नगर।

११६. मेवाड़ का आहाड़।

११७. मेवाड़ का एक ग्राम।

११८. वर्तमान पालनपुर।

११९. हथूंडी के राठौड़ के अधीनस्थ ग्राम।

१२०. आबू के निकट एक गांव।

१२१. चौहाणों का आदिम स्थान शायद जोधपुर का पूर्वकी।

१२२. सिरोही राज्य में वर्तमान।

था। राजा के जलूस इन्हीं से होकर निकलते। इसके अतिरिक्त महारथ्या और उपरथ्या आदि अनेक मार्ग एवं उपमार्ग प्रत्येक नगर में बनाये जाते। कूप, प्रपा, उपवनों आदि का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाता जहां लोग आसानी से पहुंच सकें। चण्डालों के घर और श्मशान नगर से बाहर रहते। छोटे ग्रामों की दशा सम्भवतः प्रायः वही थी जो अब है।

पृथ्वीराज विजय, प्रभावकचरितादि ग्रंथों में नगरों का जो वर्णन है उससे शिल्पग्रन्थों की शर्तें बिल्कुल ठीक उतरती हैं। जयानक के वर्णनानुसार अजमेर अनेक प्रकार के मंदिरों से परिपूर्ण था। लोग नित्य यज्ञ करते। वेदों का गान होता। बड़े बड़े ऊँचे मकान थे राजगृह अत्यन्त शुभ्र छत्रों, हाथियों और घोड़ों से शोभित था। जहां वापी, कूप, तालाब और अनेक प्रकार की प्रपायें जल से परिपूर्ण थीं। यद्यपि दुर्ग पहाड़ पर बना था तो भी उसके कूपों में जल की कमी न थी। वहां स्त्रियां केशों के सुगन्ध के लिये इतने अगरु का प्रयोग करतीं कि पहले कलई से पुते महल और फिर चन्द्रमा भी श्याम पड़ जाता। बाजार में इतने कपूर के चूर्ण का प्रयोग था कि लोगों के कपडे सफेद पड़ जाते। १२३

उपर्युक्त वर्णन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण एवं अपूर्ण है। 'प्रभावकचरित' से हमें ज्ञात है कि अजमेर चारों तरफ प्राकार से घिरा था और प्राकार के बाहर दो योजन तक बबूल, बेर, खदिर, करीर आदि कंटीले वृक्षों का इतना सघन वन था कि कुमारपाल चौलुक्य अनेक संख्यक लोगों को लगाकर भी उसे काट न सका। १२४ यही स्थिति नागोर आदि महान दुर्गों की भी थी। सांस्कृतिक दृष्टि से देश सम्भवतः उस कोटि पर न रह पाया था जिसपर पांच सौ छ सौ वर्ष पूर्व वह पहुँच चुका था। किन्तु देश में, विशेषकर राजस्थान में शौर्य की कमी न थी। युद्ध के साधन भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान थे। आवश्यकता केवल ऐक्य की थी, और उसका दुर्भाग्यवशात् देश में बहुत कुछ अभाव था। चौहाणों ने लोगों में आर्यत्व की भावना को जागृत करने का प्रयत्न किया किन्तु वे इस कार्य में अल्पांश में ही कृतकार्य हो सके।

---

१२३. पृथ्वीराज विजय, पंचम सर्ग।

१२४. प्रभावकचरित हेमचन्द्रसूरि प्रबन्ध।

राठोड़ वीर दुर्गादास का एक पत्र

[लेखक—महामहोपाध्याय पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ]

मारवाड़-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) एक स्वाधीन प्रकृति के व्यक्ति थे। इसीसे वे सम्राट औरंगजेब की अत्यधिक इस्लामपरक प्रवृत्तियों के लिए सदा ही उसका विरोध करते रहते थे। यद्यपि सम्राट् भी उक्त महाराजा की इस विरोधी भावना के कारण उन्हें दण्ड देना चाहता था, तथापि उस समय की परिस्थितियों के कारण, उनके जीतेजी, उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। परन्तु वि० सं० १७३५ में उनके जमरूद में स्वर्गवासी होते ही उसने, पुराना बदला लेने के लिए, मारवाड़ पर अधिकार कर महाराजा जसवन्तसिंह के (पिता की मृत्यु से २ मास बाद उत्पन्न हुए) नवजात राजकुमार अजितसिंह को भी अपने अधिकार में कर लेने की चेष्टा प्रारम्भ की। ऐसे समय मारवाड़ के सरदारों ने राठोड़ वीर दुर्गादास की अधिनायकता में, पहले तो अपने बालक महाराजा को चुप-चाप जोधपुर की ओर भेज कर सिरोही के पहाड़ों में छिपा दिया और फिर शाही सेना के साथ दीर्घकालीन युद्ध के बाद सम्राट् औरंगजेब के तृतीय पुत्र मुहम्मद अकबर को, अपने पिता का अनुकरण कर उसके जीतेजी ही, अपने को बादशाह घोषित करने को उद्यत कर लिया।

यद्यपि शाहज़ादे ने राजपूत सरदारों की सलाह मान कर वि० सं० १७३७ में नाडोल में अपना भारत सम्राट् होना घोषित कर दिया, तथापि चतुर और वृद्ध सम्राट् औरंगजेब ने अपनी चालाकी से, राजपूतों को धोका देकर, उनकी सब कल्पनाओं को विफल कर दिया। इसी कारण वीर दुर्गादास ने कुछ दिन और लड़ते-भिड़ते रहने के बाद अन्त में सम्राट् का, जो उस समय अजमेर था, ध्यान मारवाड़ से दूसरी ओर फिराने के लिए, भाग्यहीन शाहज़ादे अकबर को दक्षिण में ले जाने का विचार किया।

इसी के अनुसार दुर्गादास उसे लेकर शम्भाजी के दरबार में जा पहुँचा। इस का परिणाम यह हुआ कि सम्राट औरंगज़ेब शीघ्र ही मेवाड़-नरेश महाराना

जयसिंह से सन्धि कर और मारवाड़ का भार शाहज़ादे मुहम्मदअजीम पर छोड़ स्वयं दक्षिण की तरफ चलपड़ा।

वि० सं० १७४४ में दुर्गादास ने फिर मारवाड़ लौटने का विचार किया, क्योंकि उसको वहाँ से चले ६ वर्ष हो चुके थे। परन्तु उसने शाहज़ादे अकबर को इस यात्रा में अपने साथ रखना अनर्थजनक समझ उसे समुद्र के मार्ग से फारस भेज दिया और स्वयं मारवाड़ म चला आया।

आगे राठोड़ दुर्गादास के एक पत्र की नकल दी जाती है। यह उसने (मारवाड़ के) बीलाड़े गाँव की आई माता के दीवान राजसिंह के नाम लिखा था। इससे प्रकट होता है कि कुछ काल बाद एकबार फिर शाहज़ादे अकबर ने दिल्ली के सिंहासन के लिए अपने भाग्य की परीक्षा की थी। परन्तु इस बात का उल्लेख प्रचलित इतिहास-पुस्तकों में न मिलने के कारण यह पत्र मुगल इतिहास पर कुछ नवीन प्रकाश डालता है।

(पत्र)

श्री परमेश्वरजी सत्य छे

स्वस्ति श्री गांव डायलांणा सुथाने चोधरीजी श्री राजसिंहजी जोग्य लश्कर था राज श्री दुरगादासजी लिखावतं जुहार आवधारजोजी अठारा समाचार श्री महाराजाजी रा तेज प्रताप कर भला हे राजा रा कागल समाचार सदा भला चाहीजे। राज उप्रांत म्हांरे कांई बात न छे अठा सारु काम काज हुवे सु लिखिया करजो किणी बात री जुदागी मत जाणजो अठा उठारी एक बात कर जाणजोजी अप्रांच राज रो कागल आयो समाचार प्रीछीया आबां री लापसी मेली थी सु पोहती छे अप्रंच

श्री अकबरजी री हजूर था कासीद आगे आया था आँ साथे सामाचार आया था सु म्हे राज नु पहला लिखीयो छै नें दीखण री खबर आयां यो आई छे मु० काबुल था अमीरखां[1] पातशाह नूं वाका में लिखीयो छे जु अकबरजी रो थांणो खंधार आयो छे नें असवारी हुई छे सताब हिन्दुस्थान नूं आवसी तिण ऊपर आजम[2] तारा नूं विदा कियो छे।

---

(१) यह खलीलउल्लाखांयज्दी का पुत्र था और मीर-ए-मीरां कहाता था। यह सम्राट औरंगजेब का कृपा-पात्र था और वि० सं० १७५५ में काबुल में मरा था।

(२) यह सम्भवतः सम्राट औरंगजेब का द्वितीय पुत्र था।

राजा रामसिंघ रा पोतरा नूं दोय हजारी चार हजार असवार नें एक किरोड़ दाम इनांम आंबेर देने राजाराम[4] उप्रे विदा कियो छे ।

और समाचार आवती सुं राजनें लिखसां समसथ साथ रो जुहार अवधारजो वलता कागल समाचार वेगा देजो असाढ़ सुदि १३ रविवारे मु० कोटडा ।

(आडी पंक्तियों में):—

कवर तेजकरण मेहकरण अभैकरण रो जुहार अवधारजो कँवर भगवानदास[5] स्यामदास महेसदास सुन्दरदास मनोहरदास जोगीदास नूं राम राम वांचजो अचलदास भोजराज कल्याणदास[6] चन्द्रभाण अजबसिंघ रो जुहार वांचजो ।

यद्यपि इस पत्र में संवत् नहीं लिखा है, तथापि राजा रामसिंह के पौत्र को आंबेर का दिया जाना और उसका राजाराम पर चढ़ाई करना वि० सं० १७४६ की घटनायें हैं ।

इस के अतिरिक्ति उपर्युक्त पत्र में आषाढ़ सुदि १३ को रविवार लिखा है, जो विक्रम संवत् १७४५ और १७४८ में आता है । इस से संभवतः यह पत्र वि० सं० १७४८ में (२८ जून स० १६९१ ई० को) लिखा गया होगा ।

---

(३) राजा रामसिंह का पौत्र बिशनसिंह वि० सं० १७४६ में अपने पितामह का उत्तराधिकारी हुआ था ।

(४) राजाराम शिवाजी का द्वितीय पुत्र था और वि० सं० १७४६ में, अपने ज्येष्ठ भ्राता शम्भाजी के मुगलों द्वारा पकड़ लिए जाने के बाद, उनका उत्तराधिकारी हुआ । परन्तु कुछ ही काल बाद शाही सेना के आक्रमण के कारण इसे वेष बदल कर भागना पड़ा ।

(५) भगवानदास दीवान राजसिंह का, जिसे उपर्युक्त पत्र लिखा गया था, पुत्र था ।

(६) कल्याणदास दीवान राजसिंह का पौत्र था ।

राजस्थान के एक प्रतिभाशाली लोक-चित्रकार

[लेखक–देवीलाल सामर, एम. ए.]

राजस्थान जहाँ वीरता और शौर्य का केन्द्रस्थल रहा है, वहाँ वह साहित्य, कला और संगीत का प्रेरक भी रहा है। चारणों द्वारा प्रणीत वीरकाव्य, मीरा, दादू के भक्तिगीत, बिहारी का रीतिकाव्य, उस्ताद अलाबन्दा और जाकूदीनखाँ का शास्त्रीय संगीत, जयपुर के जयलाल, सुन्दरलाल का कत्थक नृत्य और नाथद्वारा के स्वर्गीय घाँसीरामजी जैसे महान् चित्रकार आज भी समस्त भारतवर्ष में राजस्थान का मस्तक ऊँचा किये हुए हैं। शताब्दियों तक राजस्थान कला और साहित्य के क्षेत्र में भारत का पथप्रदर्शक रहा है। जहाँ राजस्थान की विशृंखल राजनैतिक स्थिति के कारण यहाँ का वातावरण सर्वदा बिखरा हुआ और अस्तव्यस्त रहा है और जन-जीवन की अधिकांश शक्तियाँ युद्ध और देश की सुरक्षा में ही लगी रहीं वहाँ राजाओं के आश्रय में अनेक कलाकारों का विकास भी हुआ है। इसी आश्रय के कारण ही आज इस गई-गुजरी अवस्था में भी यहाँ अनेक शिल्पकार, कलाकार, संगीतज्ञ, कवि, चित्रकार, दस्तकार आदि विद्यमान हैं। यह आश्रय अब समय के परिवर्तन के साथ ही धीरे धीरे राजाओं से हटकर जनता और संस्थाओं के पास जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से यह परिवर्तन कलाकारों के लिए अहितकर अवश्य सिद्ध हुआ है परन्तु जन जीवन और कला के सामाजीकरण की दृष्टि से यह हितकर सिद्ध हुआ है।

राज्याश्रय समाप्त होने के पश्चात ही एक प्रकार से राजस्थान की समस्त कलाएँ अंधकार के घने बादलों में छिप गईं, कई कलाकारों के लिए आजीविका का प्रश्न अत्यन्त जटिल रूप में उपस्थित हुआ। और जो कलाकार आज भी राज्याश्रय में बने रहे वे केवल प्राचीन स्मृति-चिन्हों के रूप में तथा परवरिश के तौर पर केवल वेतनभोगी बने हुए हैं। उनकी कला को सराहने वाले बहुत कम रह गये और वह केवल मृतप्रायः सी हो गई। परन्तु हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही जीवन के अन्य पहलुओं की तरह कला में भी आमूल परिवर्तन हुए और राज्याश्रित कला एक प्रकार से सठियाने लगी और लोकप्रिय कलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। यही

कारण है कि जयपुर के कत्थक, शिल्पकार और चित्रकार आज अपनी अंतिम सांसे गिनने लगे हैं। उदयपुर के प्रसिद्ध गायक अल्लाबंदा, और जाकरुद्दीनखाँ के वंश प्रायः नष्ट से हो चुके हैं, नाथद्वारा के चित्रकार अब गली गली अपनी तस्वीरें कौड़ियों के दाम बेच रहे हैं, आबू और सिरोही के मूर्तिकार तो अब स्वप्नवत् ही हो गये; परन्तु इस स्थिति से हमें अधिक निराश होने की आवश्यकता नहीं। युग बदलता है जीवन के तौर-तरीके बदलते हैं, मनुष्य बदलता है और कला भी बदलती है। जनतन्त्र के इस युग में यद्यपि कला का नया रूप अभी निखरा नहीं है, परन्तु फिर भी सामंतवादी वातावरण में पली हुई राजपूत कलम आज भी मरी नहीं है। राजस्थान का समस्त वर्तमान राष्ट्रीय जीवन अपनी खुद की अर्जित सम्पत्ति नहीं, वह अन्य प्रान्तों से उखाड़कर लाया हुआ पौधा है जो इस भूमि पर रोपा गया है। राजस्थान आज से कुछ ही समय पूर्व सामन्तवादी राजव्यवस्था के अभ्यस्त था इसलिए यह नवीन पौधा अभी अंकुरित नहीं हुआ है, इसके पनपने और फलने फूलने में काफी समय लगेगा। यही कारण है कि लोक-प्रिय और लोकोपयोगी कला का रूप भी अभी निखरा नहीं है। नाथद्वारा की कलम में राजपूत कला का प्राधान्य होते हुए भी विविध यात्रियों के आवागमन से उसमें एक विचित्र प्रकार का मिश्रण हुआ है, और आज भी वह एक प्रकार की व्यवसायिक कला बन गई है।

श्रीयुक्त गोवर्धनलाल जोशी, जिनकी कला इस निबंध का विषय है नाथद्वारा ही की देन है। इनके पूर्वज नाथद्वारा के प्रसिद्ध चित्रकार थे और इन्हें भी वंश-परम्परा से ही अपनी कला प्राप्त हुई है। श्रीयुत जोशी ही राजस्थान के प्रथम कलाकार हैं, जिन्होंने समयानुसार इस कला में युगान्तरकारी परिवर्तन किये हैं। इन्हें सौभाग्य से राज्याश्रय कभी भी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए इन्हें सदा ही कठोर संघर्ष करने पड़े हैं। आरम्भ में इन्हें केवल हाथी, घोड़े तथा श्रीनाथजी की सस्ती और कलाविहीन तस्वीरें बनाने का अवसर मिला, परन्तु शीघ्र ही इन्होंने अपनी कलम को नवीन दिशा दिखलाई, प्रतिकृति और मौलिकता-विहीन कृतियों से इन्होंने मुँह मोड़ा और अपने प्रारम्भिक काल ही में इन्हें विद्याभवन जैसी शिक्षण संस्था का आश्रय प्राप्त हुआ। यहाँ के स्वतन्त्र और स्वस्थ वातावरण में श्रीजोशीजी को पनपने, फलने-फूलने और विकसित होने का अवसर मिला। इन्होंने आरम्भ से ही

लोकजीवन और भीलजीवन की ओर प्रवृति दिखाई और थोड़े ही समय में उनसे सजीव सम्पर्क साध लिया। वे केवल भीलों के सराहक ही नहीं उनके दोस्त और हितैषी भी बने। विद्याभवन की वनशालाओं में लगभग १६ वर्षों से श्रीयुत जोशीजी को मेवाड़ के प्रमुख २ सुन्दर और ऐतिहासिक स्थान देखने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्होंने गाँवों का गहरा अध्ययन किया और भीलों के साथ रहने और उनके साथ नाचने गाने में विशेष आनन्द अनुभव किया। धीरे धीरे उन्होंने उनके समस्त जीवन को अपनी कलम में उतारना आरम्भ किया। उसी समय श्रीजोशीजी को शान्ति निकेतन जाकर विश्ववंद्य श्री० नन्दलाल बोस के चरणों में बैठकर चित्रकला सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। टैगोर-शैली की चित्रकला में केवल विचार स्वातन्त्र्य ही नहीं कल्पना और भाव स्वातन्त्र्य भी है। श्री० जोशीजी ने प्रारम्भ में वहाँ पर भी टेम्परा के रूप में राजपूत कलम ही का अभ्यास किया, तदुपरान्त वहाँ के मुक्त वातावरण के अनुसार उन्होंने विविध शैलियों के चित्र बनाये। वहाँ किसी प्रकार से बँधा हुआ वातावरण नहीं था। सभी लोग अपनी रुचि और प्रवृति के अनुसार प्रयोग करने को स्वतंत्र थे; यही प्रेरणा लेकर श्री० जोशीजी उदयपुर लौटे और वहाँ उन्होंने अपनी कला का नया दौर भित्ति-चित्रों के रूप में शुरू किया। उनका सर्व प्रथम भित्ति-चित्र विद्याभवन कला-विभाग की दीवार पर बना हुआ है। इसमें भील नृत्य का एक बहुत ही सुन्दर और सप्राण चित्रण है। श्री० निकोलस रोरिक के पुत्र श्री० स्टेटो सलव रोरिक ने इसे देखकर श्री० जोशीजी में एक महान चित्रकार बनने की सम्भावना प्रकट की थी। श्री० जोशीजी ने अपने प्रारम्भिक काल ही में कला के सब बन्धन तोड़ फेंके और अपनी नवीन प्रेरणा से नवीन कला की सृष्टि की। उनकी कला के मुख्य विषय यहाँ के आदिम निवासी भील हैं, जिनके रोमांचकारी और वीरतापूर्ण चरित्र को देखकर आज का मानव भी थर्रा जाता है। उनके भोले भाले संतुष्ट चहरों को देखकर श्री० जोशीजी बचपन से ही बहुत प्रभावित हैं। उन्होंने इन भीलों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन किया है और घंटों इनकी झोंपड़ियों में बैठकर इनकी चालढाल, रहनसहन, रसमरिवाज, खानपान आदि का गहन अनुभव किया है और यही कारण है कि इनके जीवन के किसी अंग को श्रीयुत जोशीजी ने नहीं छोड़ा है। वे उनके विविध नृत्यों से बहुत प्रभावित हुए हैं। उनका कहना है कि भीलों के नृत्यों में जो विविधता, शक्ति, गीत और प्रभावोत्पादकता

है वह भारतवर्ष के किसी भी नृत्य में नहीं। श्रीयुत जोशीजी ने अपनी चित्रकला को सजीव बनाने के लिए ही उनका नृत्य सीखा और मेरे साथ भारत के कुछ प्रमुख नगरों के रंगमंच पर ग्राम्यनृत्यों में सक्रिय भाग लिया। स्वयं की अनुभूति के कारण ही श्रीयुत जोशीजी भीलों की नृत्य मुद्राओं को अपने चित्रों में इतनी सचाई और सुन्दरता के साथ व्यक्त कर सकते हैं। इनकी कलम में जो ताकत है वह बहुत ही कम चित्रकारों में देख पड़ती है। उनकी कलम में एक अद्वितीय स्फूर्ति है, वे जिधर उसे घुमा देते हैं उधर ही एक नवीन अर्थ की सृष्टि होती है। वे केवल कलम के झटके (Strokes) मारते हैं और रंगों की मदद से एक अद्भुत कलाकृति को जन्म देते हैं। वे चित्र की बारीकी में प्रवेश नहीं करते। केवल ऊपरी प्रभाव ही उनके लिए पर्याप्त होता है। समस्त तस्वीर साधारण रूप से बन जाने पर वे उसे पानी से धोते हैं और फिर रंगों को मिलाते हैं। श्री० जोशीजी के चित्रों के सभी मनुष्य औसत से अधिक सुन्दर होते हैं, और स्त्रियों की साड़ियाँ अत्यन्त कलात्मक होती हैं, उनकी आँखों में एक विचित्र सी मोहकता और चहरे पर मस्ती रहती है। उनके हाथों पावों में एक विचित्र सी कलात्मक गीत और लय होती है। उन्होंने अपने चित्रों में नाथद्वारा-शैली का बिलकुल ही परित्याग कर दिया है। वे अब अतिशय गहरे और चड़क-भड़क वाले रंग नहीं प्रयोग में लाते और न राधाकृष्ण का विषय ही उनकी तसवीरों में है। कहने का तात्पर्य है कि जहाँ जोशीजी की शैली में नवीनता है वहाँ विषय, प्रेरणा और आशय भी नये हैं। जोशीजी के चित्रों के मनुष्य एक विचित्र सा सन्देश लिए हुए होते हैं। राजस्थान के रूखे सूखे बंजर खेत पहाड़ और घाटियों में सर पर अतिशय बोझा ढोते हुए दीन हीन भीलों के चहरों पर जहाँ उदासीनता, दरिद्रता और घोर निराशा दिखाई देती है वहाँ उनके नृत्यों में उन्होंने एक अद्वितीय मस्ती और लयका दिग्दर्शन भी कराया है। अपनी स्त्रियों के साथ मस्त होकर नाचते हुए भील अपने समस्त दुख दर्दों को भूल जाते हैं और उनके कृश, दीन दुर्बल शरीर में भी एक विचित्रसी लय और मनमोहकता का दर्शन होता है। स्त्रियों की भाव-भंगियाँ अतीव मनोमुग्धकारी और कलापूर्ण होती हैं। पुरुषों के साथ वृत्ताकार नाचते हुए और स्वर में स्वर और लय में लय भरते हुए उनमें जो गीत और शरीर का मोड़ तोड़ दर्शाया है वह अद्वितीय है। चेहरों पर प्रसन्नता और मस्ती होते हुए भी उनमें काम-भावना लोशमात्र भी नहीं। श्री०

जोशीजी द्वारा चित्रित नृत्यों में एक अपूर्व आध्यात्मिकता और पवित्रता है। उनमें शहरी नृत्यों की कोमलता, कमनीयता कामुकता, और चड़कभड़क नहीं है। वे सुन्दर ओजपूर्ण और उत्साह-वर्द्धक हैं। उनमें पौरुष और आँधी का सा प्रवाह है। चित्रों की प्रत्येक रेखा अपने में एक गहरा अर्थ रखती है। इसके साथ ही श्री० जोशीजी के चित्रों की नारियों का अलंकरण और वेशभूषा में वास्तविकता के साथ ही एक अपूव कला है। जोशीजी का इस सम्बन्ध में बहुत ही गहरा अध्ययन है। भीलों की वेशभूषा के बेल बूटों (Designs) का उन्हें बहुत ज्ञान है। जब भी अवसर मिलता है वे किसी भी भील ग्राम में पहुँच जाते हैं और चौराहे पर बैठकर भील जीवन के चित्र अंकित किया करते हैं। वैसे भील भी आजकल की विशेषताओं से वंचित नहीं रहे हैं, उनकी वेशभूषा तथा जीवन की अनेक बातों में शहरीपन आगया है, परन्तु जोशीजी ने अपने भीलों की वेशभूषा में पुरातन का बहुत ही ध्यान रखा है। जोशीजी के चित्रों में एक और विशेषता है; उनमें मानव आकृतियों का प्राधान्य है। पृष्टभूमि में जो भी उपकरण दिखाये जाते हैं वे गौण हैं और केवल मूल विषय को उभारने और सार्थक बनाने के लिए हैं। कभी कभी तो वे केवल विषयानुकूल मानव आकृतियों के विशाल चित्र कागज या कपड़े पर बना लेते हैं और बाद में कलम के कुछ ही झटकों से आस पास का वातावरण अंकित करते हैं, उससे समस्त चित्र की शोभा निखर आती है, और वे आकृतियाँ किसी वातावरण से अनुबद्ध हो जाती हैं।

जोशीजी के चित्रों में बंगाली-शैली के अनुसार आकृतियों का आदर्शीकरण नहीं सा है। वे नयन, भुजाओं, अंगुलियों, कटि एवं ग्रीवा आदि के अंकन में अतिरंजना में विश्वास नहीं रखते। उनकी आकृतियाँ वास्तविकता के अधिक निकट हैं, यद्यपि वे विषय के चुनाव में सुन्दर सामग्री का ही चुनाव करते हैं और कुरूप को त्याज्य समझते हैं। भील बहुधा फटे गले, मलिन, भद्दे वस्त्र ही पहिनते हैं, परन्तु कलाकार सौन्दर्य का पुजारी है, वह कुरूप में भी सौन्दर्य को खोज निकालता है, यही कारण है कि श्रीजोशीजी के भीलों के वेश आदि स्वाभाविक होते हुए भी कलात्मक होते हैं। श्रीजोशीजी के चित्रों में राजपूत कलम की भावभंगियाँ, रंगों का सौन्दर्य और विषय की कमनीयता है, परन्तु उनमें कलम की बारीकी नहीं है। श्रीजोशीजी

चित्र के सम्पूर्ण प्रभाव में विश्वास रखते हैं, उनकी आंशिक सफलता में नहीं। यदि कलम के कुछ झटकों से ही वांछित सौन्दर्य उत्पन्न किया जा सकता है तो फिर मुगल और राजपूत कलम की तरह सजावट, नक्काशी और बेलबूटों में क्यों उलझा जाय।

श्रीजोशीजी की कलापर किस शैली का विशेष प्रभाव पड़ा है, यह कहना बड़ा कठिन है। वे इस बात के प्रबल पक्षपाती हैं कि चित्रकार को अपनी शैली की पसन्दगी में पूर्णरूप से स्वतन्त्र होना चाहिए। प्रत्येक चित्रकार का अपना व्यक्तित्व होता है और उस व्यक्तित्व की छाप उसकी शैली पर अवश्य होनी चाहिए। यह बात तो स्पष्ट है कि वे अपनी कृति को आँखों से देखे हुए किसी दृश्य की हूबहू प्रतिकृति नहीं बनाना चाहते। उनका कहना है कि चित्रकार किसी भी वस्तु को केवल भौतिक आँखों से ही नहीं आध्यात्मिक आँखों से भी देखता है। उसके नेत्र केवल फोटू लेनेवाला केमरा नहीं है, इसीलिए चित्र में वास्तविक वस्तु से कुछ विशेषता तो होनी ही चाहिए और यही विशेषता कला है।

श्रीजोशीजी के अधिकांश चित्र भील जीवन के हैं, और उसमें भी उन्होंने उनके नृत्यमय जीवन को विशेष व्यक्त किया है। उनका कहना है कि जमाना बड़ी तेजी से बदल रहा है और इस बदलते हुए जमाने में भील भी सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ी तेजी से बदल रहे हैं; वे नित्यप्रति अपनी विशेषताओं को खो रहे हैं, यदि उन्हें जल्दी से जल्दी चित्रों द्वारा अंकित नहीं किया जायगा तो प्राचीन सभ्यता की यह अद्वितीय झांकी फिर कभी देखने को नहीं मिलेगी; इसका यह अर्थ नहीं कि भीलों को सदा ही पिछड़ा हुआ, अशिक्षित, और शहरी जीवन से दूर ही रखा जाय; परन्तु इस असभ्यता और जहालत में जो भी सौन्दर्य उनके पास शेष है उसे ऐतिहासिक दृष्टि से सुरक्षित रखना चाहिए। इसीलिए श्रीजोशीजी उनके जीवन की अधिक से अधिक सुन्दर झांकियों को अपनी कलम में उतार लेना चाहते हैं।

श्री० जोशी जी ने भीलों के अलावा जनजीवन की और भी कई झांकियां दिखलाई हैं। उनके लोहारों के चित्र भी बड़े सुन्दर हैं। और साथ ही साथ डांगियों के चित्र, बनजारों के चित्र भी बड़े सुन्दर हैं। बोझा ढोते हुवे किसान,

औजार घड़ते हुए लोहार, तम्बाखू पीते हुए पटेल और बकरियां चराते हुए गड़रियों के चित्र अत्यन्त मनमोहक हैं। श्रीयुत जोशीजी ग्राम्यजीवन और लोकजीवन से इतने प्रभावित हैं कि उन्होंने अपनी कला को केवल मानवी आकृतियों तक ही सीमित नहीं रखा है; उन्होंने बाजारों, गलियों और हाटों के दृश्य भी विविध रूप से अंकित किये हैं। इसमें भी उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। प्रकाश और छाया (Light and Shade) के सम्मिश्रण से उन्होंने अद्वितीय प्रभाव उत्पन्न किया है। बाजारों और गलियों के दृश्य पास से देखने में अत्यन्त प्राथमिक और केवल विविध रंगों की भीड़ जैसे प्रतीत होते हैं, परन्तु दूरी से देखने में वे अत्यन्त भव्य और मनोरम दिखलाई पड़ते हैं। श्री० जोशीजी के रंग और कलम की यही शक्ति है जो उन्हें भारत विख्यात चित्रकारों की कोटि में ला रखता है।

श्री० जोशीजी अत्यन्त सरल और मधुर स्वभाव के हैं। सादगी और सरलता के तो जैसे वे अवतार हैं। विद्याभवन के जीवन सदस्य के नाते उन्होंने बहुत बड़े त्याग का परिचय दिया है। महत्वाकांक्षा और ख्याति से तो वे कोसों दूर भागते हैं। चुपचाप अपनी कला-साधना में निरत रहते हैं और विद्याभवन के इस अत्यधिक व्यस्त जीवन में वे कब और कैसे भव्य चित्र बना लेते हैं यही आश्चर्य की बात है। अपने विशाल परिवार, चार छः बकरियों और सूक्ष्मातिसूक्ष्म गार्हस्थिक सामग्री के बीच यह मस्तमौला अपने जीवन के अनेक संकटों को बहादुरी से झेलता हुआ जीवन यापन करता है। चहरे पर एक क्षण भी इसके उदासी और चिन्ता की रेखा नहीं। श्री० जोशीजी के अन्तराल में जितना सौन्दर्य अन्तर्हित है उतना ही वे बाहर से सीधे सादे और कुरूप से लगते हैं। इसी सादगी के मध्य में उनका व्यंग्य-प्रिय स्वभाव अनायास ही उन्हें सर्वप्रिय बना देता है।

श्री० जोशीजी के चित्रों की एक प्रदर्शिनी अखिल भारतीय आर्ट एन्ड क्राफ्ट सोसायटी के तत्वावधान में ता० २० जुलाई १९४७ को दिल्ली में आयोजित की गई, जिसका उद्घाटन श्रीमती सरोजनी नायडू ने देश के अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों और कलाकारों के समक्ष किया। श्रीमती नायडू ने अपने उद्घाटन भाषण में श्री० जोशीजी की कला की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और भील-जीवन के उनके अनेक और कलात्मक चित्रण के लिए उन्हें बधाई दी।

श्री० जोशीजी के चित्रों की देश के अनेक कलाकारों ने सराहना की है और उन्हें भील-जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति का सर्वप्रथम और श्रेष्ठ कलाकार घोषित किया है। विश्वविख्यात कलाकार श्री निकोलस रोरिक के पुत्र और सुप्रसिद्ध कलाकार श्री स्टेवसलोव रोरिक तथा उनकी पत्नी श्रीमती देविका रानी रोरिक ने भी श्री० जोशीजी को उनकी जीवनपूर्ण और उत्कृष्ठ कलाकृतियों पर लिखित अभिनन्दन दिया है।

श्री० जोशीजी निश्चय ही राजस्थान के एक सधे हुए और प्रतिभाशाली कलाकार हैं। और राजस्थानी कला-परम्परा की आज भी गौरव के साथ रक्षा कर रहे हैं। उदयपुर के इस निरीह और शिथिल वातावरण में श्री० जोशीजी की कला-साधना एक टिमटिमाते दीपक के समान है; परन्तु उचित वातावरण और प्रोत्साहन पाकर वह कभी निश्चय ही सूर्य का प्रकाश धारण करेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

राजस्थान का एक लोक प्रिय संगीतकार "चन्द्रसखी"

[लेखक-मनोहर शर्मा]

राजस्थान के लोगों के लिए एक दृश्य बड़े ही सौभाग्य का है। रात्रि की निर्जनता में सुदूरव्यापी टीबों के रजतकणों पर जब चन्द्रदेव की अमृतमयी किरणें आकर गिरती हैं तो धरती और आकाश आपस में मधुर आलिंगन करते हुए से मालूम पड़ते हैं। शान्ति और सौन्दर्य का एक विषेश प्रकार का सम्मिश्रण सामने आजाता है। ठीक यही तत्व राजस्थान के वातावरण में घुलेहुए चन्द्रसखी के भजनों में है। प्रातःकाल उठकर स्त्रियां घर गिरिस्ती के भिन्न २ कामों में से लग्न हो जाती हैं, अपने नित्य के नियम के अनुसार उस समय उनके हाथ काम करते रहते हैं और उनके कोमल कण्ठों से चन्द्रसखी के भजनों की अमृतधारा बहती रहती है। चक्की पीसती हुई स्त्रियां अपने भजनों की स्वरलहरी को चक्की के घर्राटे में मिलाती हुई यह भूल जाती हैं कि उनको आटा पीसने में कुछ श्रम भी है। बुहारी निकालती हुई स्त्रियां भजनों के आनन्द रस के द्वारा अपने मन के विचारों के साथ २ अपने घर का चौक साफ करती हैं। जिस समय वे दही की बड़ी सी हांडी को अपने सामने रख कर बिलौना आरंभ करती हैं दोनों हाथों से रस्सी के साथ दही को घर्र-घर्र करती हुई सारे शरीर को हिलाती हैं तो अभ्यास वस उनके मुख से "हरजस" निकलने लगते हैं, उस समय वे अपनेको ऐसा अनुभव करती हैं मानो वृन्दाबन की कोई गोपी दधिमन्थन करती हो और अभी २ मोहन हाथ में बांसुरी लिए हुए उसके पास आनेवाला हो। अपने काम के श्रम को भजनों के आनन्द में डुबाकर उसे सरस कर लेती हैं और इस प्रकार उनके जीवन में एक विषेश प्रकार का प्रकाश बना रहता है—

छोटी सी लाडी, राम भजन में कैंया लागी ?
सासू बोली सुन मेरी बहुवड़, ऐसा काम नहीं कीजै।
राम नाम तो पीछे लीजे घरका धन्धा कीज।
बहुअड़ बोली सुन मेरी सासू ऐसो सीख नहिं दीजै।
राम नाम तो मुख से लीजे, हाथां धन्धा कीजै।

जब स्त्रियां किसी विशेष अवसर के लिए इकट्ठी होती हैं उस समय वे चन्द्रसखी के भजन गाती हैं बड़े प्रेम से। जब वे मिल कर कहीं फेरी देने के लिए निकलती है तो उनके सम्मिलित स्वर से सुनाई पड़ता है—

मन विंदरावन चाल बसो रे, मान घटो चाहे लोग हंसो रे।
प्रीत के कारण कुटम तज्यो है, नंदकों छबीलो मेरे मनमें वस्यो रे।
चन्द्रसखी मोहन रंग रांची, ज्यूं दीपक में तेल रस्यो रे।

जब बहुत सी स्त्रियां कथा सुनने के लिए या अन्य किसी कार्य के लिए मंदिर में इकट्ठी होती हैं तो उनसे गाये बिना नहीं रहा जाता—

कोई कहियो रे मोहन आवण की।
आप तो जाय दुवारका छाये, हमको जोग पठावण की॥
आप न आवे पतियां ना भेजे, वात करे ललचावण की।
ए दोऊँ नैण कह्यो ना माने, घटा उमड़ रई सावण की॥
दिल चाहत उड़ ज्याय मिलूं, पर पांख नहीं उड़ज्यावण की।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छिव, चरण कँवल लपटावण की॥

जब एकादशी का जागरण होता है, उस समय भी चन्द्रसखी और वही मधुर रस—

पलक न लागे, स्याम विन पलक न लागे मेरी।
हरि विन मथरा ऐसी लगत है, चंदा बिन रैन अन्धेरी।
इत मथरा उत गोकुल नगरी, विच विच जमनां गहरी।
साँवरे की खातर जोगण हूंगी, घर घर दूंगी फेरी।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छिव, हरि चरनन की चेरी।

स्त्री समाज के अतिरिक्त भी चन्द्रसखी का कम प्रसार नहीं है। फागण के महीने में ग्रामीणलोग अपना सब राग द्वेष और हर्ष-शोक भूल कर अपने गांव के चौक में अथवा कहीं ऐसे ही खुले स्थान में इकट्ठे होते हैं। दो तीन आदमी डफ बजाते हैं और दूसरे इकट्ठे लोग उनके स्वर में स्वर मिलाकर झूम झूम कर कभी २ नाच २ कर बड़े जोर से अपने जी के सारे अरमान निकाल कर गाते हैं। उनके ग्राम-गीतों की स्वरलहरी में भी चन्द्रसखी का मोहक नाम सुनाई पड़ता रहता है—

"बोलत नांही, राधे गोरी काहे से ।
पीळी पीळी देह वणी राधे को जळ जमना के न्हाये से ॥
उजळा उजळा दांत वएया राधे का मिस्सी की रेख लगाए से ।
काळा काळा केस वएया राधे का तेल फुलेल लगाये से ॥
तीखा तीखा नैण वएया राधे का सुरमा की रेख लगाये से ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव चरणां में ध्यान लगाये से ॥

इसके अतिरिक्त एक हाथ में खड़ताल और दूसरे हाथ में इकतारा लेकर घर घर घूमनेवाले साधु चन्द्रसखी के भजनों को झूम २ कर गाते हैं ।

उसमें वे भूल जाते हैं कि उनके भजन-भजन गाने के लिए नहीं गाए जारहे हैं बल्कि भिक्षा के रूप में कुछ पाने के लिए—

अब कहाँ जायगोरे लीन्हों हाथ पकड़के ।
निर्भय दधि खाने को बैठो, आगे मटकी धरके ॥ अब० ॥
मोय देख भोळो बन बैठ्यो खायले नियती भरके ॥ अब० ॥

*　　*　　*　　*

चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव, मोरमुकट सिर धरके ॥ अब० ॥

इन सब के अलावा जहां शिक्षितों का संगीत समाज जुड़ता हैं, सुननेवाले राग रागनियों के भेद जानने वाले होते हैं और गाने वाला कोई गायक । अथवा जहां पक्की चीजों के कद्रदां होते हैं उस समय भी चन्द्रसखी का नाम सुनाई देता है । चन्द्रसखी की "मेघ मल्हार" को सुनकर वर्षा की बूंदें आकाश से गिरें या न गिरें परन्तु श्रोताओं के श्रुतिपुटों में इसकी बूंदें अवश्य गिरती हैं—

रितु आई बोले मोरारे, मेरा श्याम बिना जिया दोरारे ।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल करत किलोलारे ॥
उतर दिसा से आई बदरियाँ, चमकत है घन घोरारे ।
रिमझिम २ मेवला बरसे, आँगण मच रह्या सोरारे ॥
राधाजी भीजैं रंगमहल में, स्यालू की कोर किनोरारे ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव, श्याम मिळ्यां जिया सोरारे ॥

इन "चन्द्रसखी" नामयुक्त भजनों का प्रणेता कहां का रहने वाला कौन था आदि बातें अज्ञात हैं । कहा जाता है कि सखी सम्प्रदायके किसी कविने अपना उपनाम "चन्द्रसखी" रखकर भजन बनाये-वेही भजन चन्द्रसखी के भजन हैं । आनन्द स्वरूप कृष्ण की उसके पुनीत भक्तों ने नाना प्रकार से आराधना की है ।

भिन्न २ कवि हृदयों ने उसकी लीलाओं का भिन्न २ रूपों में यशोगान किया है। जमना के किनारे, कदम्ब की छाया में, गोकुल की गलियों में, वृन्दावन की निकुंज में, गोप कुटुम्बों के घरों में, नन्द नन्दन कृष्ण ने अनेक प्रकार की लीलाएँ की हैं। राधाकृष्ण की प्रेम लीला पर मुग्ध होकर भक्त कवियों का हृदय वृन्दावन की ओर दौड़ पड़ता है और वे अपने आपको अपने गीतों में ऐसा अनुभव करने लगते हैं मानों वे स्वयं कृष्ण की लीलाओं में भाग ले रहे हों। मन मोहन की मुरली की तान सुनकर व्रजकी युवतियां दौड़ पड़ती थीं, वही तान कवि-हृदयों के कानों में पड़ने लगती है। कोई कृष्ण का सखा बनजाता है, कोई उनका सेवक और कोई राधा का रूप धारण करता है और कोई व्रज की गोपी का, कोई राधाजी की सखी का। राधा-माधव की प्रणय लीलाओं में उनके साथ सखिया भी होती थीं—नायिका राधा की अन्तरंग भूत।

उनके नाम भी रखे गये हैं—ललिता, तारावती, चन्द्रसखी आदि २ मधुर और सरस। किसी कविनें प्रेमाधिक्य में अपने को राधाजी की प्रिय सखी "चन्द्रसखी" समझा और यही नाम रखकर भजन बनाये। कहा जाता है कि वेही भजन चन्द्र-सखी के भजनों के नाम से लोगों के हृदय पर घर किये हुए हैं।

हजारों वर्षों से मनुष्य कविता रचता आया है। साथ ही उन रचनाओं को सुरक्षित रखने के लिए भी वह नाना प्रकार के प्रयत्न करता आया है। प्राचीन भाषाओं की रचनाएँ सभ्य जातियों के पुस्तकालयों में पड़ी हुई शोभा पा रही हैं। भाषा-शास्त्र के जानने वाले पण्डित उनका रसास्वादन भी करते हैं, परन्तु वे अमूल्य निधियाँ साधारण जनता से दूर होती जारही हैं। इसी प्रकार प्रचलित भाषाओं में रची जाती हुई रचनाओं को भी मनुष्य सुरक्षित करता आरहा है। परन्तु वे भी धीरे धीरे जनता से दूर होती जारही हैं। बहुत से उत्तम काव्य पुस्तकालयों की ही शोभा होते जाते हैं। साथ ही कुछ इस प्रकार की कविताएँ भी होती हैं जिनको सुरक्षित रखने के लिए किसी पुस्तकालय की आवश्यकता नहीं होती। उनमें जीवनशक्ति अधिक मात्रा में वर्तमान रहती है और वे धीरे २ जनता के हृदय में प्रविष्ट हो जाती हैं। तुलसीदास और सूरदास का असली महत्व यही है। उनकी वे रचनाएँ जो सर्वसाधारण के जीवन का अंग बन चुकी हैं बहुत समय तक जीवित

रहेगी। कबीर के वैराग्यमय भजनों में भी वही प्राणशक्ति है। यही बात "चन्द्रसखी" के भजनों की है वे जनता के जीवन का अंग बन चुके हैं और जनता का हृदय ही उनकी अबतक रक्षा करता आया है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी अपने आप उनको उत्तराधिकार के रूपमें ग्रहण करती आई है।

चन्द्रसखी के भजनों में जो प्राणशक्ति है वह अप्रगट नहीं है। वह बिल्कुल स्पष्ट है। उनमें भावोंकी गंभीरता नहीं है, सीधेसाधे भाव हैं। उनमें भाषा का आडम्बर नहीं है, अति सरल शब्दावली है। और उसमें अलंकारों का विधान नहीं है। स्पष्ट सौन्दर्य है। उनमें कल्पना की उडान भी नहीं। नानाप्रकार के ग्रंथों का अनुशीलन करनेवाले दिमाग की रचना वह नहीं। वह हृदय से सीधी निकलती है और यही उसका हृदय में सीधी प्रविष्ट होने का कारण है। उनमें ऊपरी दिखावा जरा भी नहीं। चन्द्रसखी के आराध्य देव की झाँकी देखिये।

भजो सुन्दर स्याम मुकुटधारी।

वदन कमल पर कुन्डल झलकें, अलकें सोवें घूंघरवारी॥
उर वैजंती माल विराजैं, वनमाला साजैं गुंजनवारी।
केसर भाल तिलक पर सोवै, मुरली की छिव है न्यारी॥
पांयन में पैजनियां सोवे, गदगद आवत गिरधारी।
वंसीवट तट रास रच्यो है, संग लिये राधा प्यारी॥
वृन्दावन में खेलत डोलत, करत विहार जहँ वनवारी।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव, चरण कंवल पै बलिहारी॥

चन्द्रसखी के आराध्य देव की यही मूर्ति है। भजन में न क्लिष्ट शब्दावली है, न उपमाओं की झड़ी। सुन्दरता और सरलता हद दरजे की है। साधारण जनता के हृदय में घर करने के लिए कविता में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं।

चन्द्रसखी ने राधा कृष्ण की प्रणय लीलाओं के अभिराम चित्र उपस्थित किये हैं। उनमें भाषा एवं भावों की सादगी हद दर्जे की है। उनमें पवित्रता एवं सौन्दर्य, सरलता एवं शुद्धता सभी गुण एक साथ मिश्रित हैं। यहां कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

❋ दर्पण लीला ❋

तेरो मुख नीको है कि मेरो राधे प्यारी ॥

दर्पण हाथ लियो नन्द—नन्दन,
सांची कहो वृखभान दुलारी ।
हम का कहें तुम ही क्यों ना देखो,
मैं गोरी तुम स्याम विहारी ।
हमरो वदन ज्यों चन्दा की उज्यारी,
तुमरो वदन जैसे रैन अंधियारी ।
तुमरे सीस पर मुकुट विराजै,
हमरे सीस पर आप गिरधारी ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव,
दोऊं ओर प्रीत बढ़ी अति भारी ।

❋ बांसुरी लीला ❋

श्री राधा रानी, दे डारो ना बांसुरी मोरी ॥

जा बंसी में मेरो प्राण बसत है,
सो बंसी गई चोरी
सोने की नांही कान्हा, रूपे की नाहीं,
हरे बांस की पोरी ।
काहे से गावूं राधे, कांहे से बजावूं,
काहे से ल्यावूं गैयां घेरी ।
मुख से गावो प्यारे, ताल से बजावो,
लकुटिया से ल्यावो गैयां घेरी ।
तेरी तो बंसी कान्हा, पड़ी रे पलंग पर,
झूठी लगाई मोहे चोरी ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिब,
हरि चरनन की चेरी ।

❋ माखन चोर लीला ❋

नन्द राणी, भलो सुत जायो ए ॥

बरजां तो बरज्यो नहिं माने,
नाय डरे वो डरायो ए ॥ नन्दराणी ॥
फळसो खोल खिड़कियां खोले,
ताळो तोड़ बगायो ए ॥ नन्दराणी ॥

पीढ़े ऊपर ऊखल मेले,
छींको तोड़ वगायो ए ॥ नन्दराणी ॥
मटकी उतार आगे धर मेली,
मक्खन भोग लगायो ए ॥ नन्दराणी ॥
नौलख धेन नन्द घर दूजे,
चोरां को चोर कुहायो ए ॥ नन्दराणी ॥
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिब,
हरि के चरण चित लायो ए ॥ नन्दराणी ॥

※ वैद्य लीला ※

डस गयो कालियो नाग राधेजी की अंगुली में ॥
सात सखी मिल चली बाग में कर सोळे सिणगार ।
ऐसो डंक दियो काळी ने, पीळो पड़ गयो हाथ ॥ १ ॥
पीळो पड़गयो हाथ सखी को अंग रह्यो मुरझाय ।
नाड़ी वाकी ठीक नहीं है कीजे कौन उपाय ॥ २ ॥
एक सखी पाणीड़ो ल्यावै दूजी ढोळै वाय ।
तीजी सखी तो ओसध ल्यावे चौथी वैद बुलाय ॥ ३ ॥
बरसाणे से वैद बुलायो बैठ्यो पलंग पर आय ।
नाड़ी की तो कदर न जाणै नैणां से नैण मिलाय ॥ ४ ॥
चन्द्रसखी मोहन की मिलनी मिलनी बारम्बार ।
नन्द महर को कंवर कन्हैयो लेजायगो लेर लगाय ॥ ५ ॥

मोहन की मुरली में गजब का जादू था। यमुना के किनारे कदम की डाल पर बैठ कर जबकि वे बंसी बजाते थे तो सारा ही वायुमंडल संगीतमय हो जाता था। ऐसा अनुभव होता था मानो अमृत की वर्षा होने लगी है। सारा वन खण्ड मंत्रमुग्ध की तरह अपना समस्त क्रियाकलाप भूल जाता था। आकाश में उड़नेवाले पक्षी नीचे उतर आते थे, जंगली पशु अपना जंगलीपन छोड़ देते थे। यमुना स्थिर हो जाती थी। ऐसा मालूम होता था मानो आसपास के पाषाण खण्ड भी द्रवित हो रहे हैं। ग्रामीण युवतियों का तो जिक्र ही क्या।

जमना के तीर कान्हा,
वंसरी बजावो थोड़ी धीरे धीरे।
जमना के किनारे बाजी वंसरी,
मोहे पशु पची नाग तीरे तीरे।
वंसरी की टेर या जियरा लुभावत,
पथरा सुनत बहन लागै भीरे भीरे।

सुन सुन के सखी धावती,
घरके काम काज छाँडि चली धीरे धीरे।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिव,
सोहत तन वसन वेख पीरे पीरे।

शरद्-पूर्णिमा की रात को वृन्दावन में रास-नृत्य होता था। व्रजकी युवतियाँ शृंगार करके यमुना के किनारे इकट्ठी होती थीं। नन्दनन्दन वंशी बजाते थे। अन्य युवतियां अन्य कई प्रकार के वाद्य बजाती थीं। नृत्य होता था। उस समय का वर्णन शब्दों से परे है। यमुना के जल में, वृन्दावन के पेड़ पौधों पर, हरे २ घास पर और युवतियों के रंगविरंगे कपड़ों पर सुधाकर की सुधामयी किरणें पड़ती थीं। सभी गोलाकार नृत्य में खड़े होते थे। समस्वर से वाद्य बजते थे। नृत्य, गीत और नाचने वालों के हृदय सभी एकाकार हो जाते थे। सब में से एक ही ध्वनि निकलने लगती थी। प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ता था और गोप कुमारियां उसमें लीन हो जाती थीं।

उसी तत्व को चन्द्र सखी के भजन में देखिए—

आज विन्द्रावन रास रच्यो है, मैं भी देखण जावूंगी।
सातूं सिंगार करूं मोरी सजनी, मोतियन मांग भरावूंगी।
ओढ़ कसूमल पचरंग लहरो, मोहनलाल रिझावूंगी।
तारावल तो तार बजावे, मैं सुर वीण बजावूंगी।
नरहरि नृत्य करे हर आगे, भैरूं राग सुनावूंगी।
ग्वाल होय गिरधारी आवै, मैं ग्वालन बन जावूंगी।
मोहन दाण मही को मांगे, कंस को जोर दिखावूंगी।
इसड़ो रास रचै मोरी सजनी, प्रेम मगन होय जावूंगी।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि जोत में जोत मिलावूंगी।

इस गीत की पिछली दो लाईनें काफी महत्वपूर्ण हैं

चन्द्रसखी के विरह के पद बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। उनसे हृदय की पीड़ा टपकी पड़ती है। और उन्हीं पदों का स्त्रीसमाज में ज्यादा प्रचार है। हजारों वर्ष बीत गये, कृष्ण वृज को छोड़ कर द्वारका चले गए थे। वृज की युवतियों के विरह ने इतना प्रसार प्राप्त किया कि वह हिन्दुसमाज की समस्त स्त्रियों के हृदयों में सदा के लिए समागया। कृष्ण का विरह उनको अब भी खलता है। मानों वे वृजकी युवतियाँ ही हों। पुरुषों का हृदय भी उसी विरह वेदना का केन्द्र बन गया। और वे भी अब तक मोहन के विरह में व्याकुल हैं।

म्हारी कौन गुन्हा तकसीर,
कुँजन वन क्यूं छोडी माधो।

जो मैं होती जल की मछलिया,
हरि करते असनान चरण विच तिरतीजी माधो।
जो मैं होती बांसकी बँसरिया,
वंशी बजाते नन्दलाल अधर रस पीतीजी माधो।
जो मैं होती मोर की पंखियाँ,
हरिके सीस पर मुकट मुकट पर रहतीजी माधो।
जो मैं होती सीप का मोती,
हरि के गले विच हार हार विच रहतीजी माधो।
जो मैं होती गऊ नन्द घर,
चारत नन्द किसोर दरस नित करतीजी माधो।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि,
हरिके चरण विच ध्यान कृष्ण संग रहतीजी माधो।

यह भजन कृष्ण भक्ति का एक उज्वल नमूना है। भक्त का हृदय कृष्ण में एकाकार होने के लिए लालायित है। जहाँ २ कृष्ण की जीवन सरिता बही है–जमना के किनारे, वृन्दावन की गलियों में वहीं २ उसका हृदय रम जाता है। कृष्ण की वंशी, उनके हार, उनके मुकुट ने भक्त के हृदय पर जादू डाल दिया है। भजन में जो उत्तरोतर उत्कर्ष विना कवि के प्रयास के अपने आप आगया है वह और भी ज्यादा आकर्षक है। "जां थल कीन्हे विहार अनेकन तां थल कांकरी बैठि चुन्यो करै" और "मानुष हो तो वही रसखानि बसौ व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन" आदि पदों में जो रस है वही रस इस गीत में द्विगुणित मात्रा में वर्तमान है। बलिहारी भक्तो की और उनके भगवान की।

चन्द्रसखी के भजनों में कहीं २ स्वाभाविकता और सजीवता अतिमात्रा में वर्तमान है, उनके गाने से एक चित्र सामने आकर खड़ा हो जाता है। वर्णन बहुत ही ज्यादा सजीव है—

प्रेमिका की अभिलाषा देखिए, प्रियतम के हाथ वह अपना शृंगार कराना चाहती है—

लट उरझी सुरझा जा,
मोहन! मोरे कर मँहदी लगी है।

माथे की विंदिया गिरीरे पलँग पर अपने हाथ लगाजा।
गले का हार मोरा टूट गया है, अपने हाथ पहनाजा।

सिर की चुनरिया मोरी सरक गई है, अपने हाथ उढ़ाजा।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छिब, अपनी सूरत दिखाजा।

दूसरा उदाहरण देखिए। राधाजी को ऊधव के हाथ कृष्ण का पत्र मिला है। उसने पत्र लिया है।

पाति, सखी! माधोजी की आयी,
आप न आये श्याम मनोहर, ऊधव हाथ पठायी।
बिन दरसण व्याकुल भयो जिवड़ो, नैनन नीर बहायी।
मन सकुचाय ओट घूंघटकी, पतिया छतियां लगायी।
कपट की प्रीत करी मनमोहन, मोरी सुध बिसरायी।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, दरसण बिन अकुलायी।

इस भजन में यथार्थ चित्र उपस्थित है।

चन्द्रसखी की लोकप्रियता का एक कारण और भी है। उसके भजन वैसे ही हैं जैसे कि स्त्रियों के लोकगीत।

उसकी रचना और कहीं २ भाव भी लोक-गीतों के समान ही है—

मिळता जाज्यो राज गुमानी।
थारी सूरत देख लुभानी।
म्हारो नाम थे जाणो बूझो मैं छूं राम दिवानी।
आंमी-सांमी पोल नन्द की चन्दन चोक निसानी ॥ १ ॥
थे म्हारे घर आवो बंसीवाळा करस्यां भोत लडानी।
करूं रसोई सोद की जी भोत करूं मिजमानी ॥ २ ॥
थे आवो हरि धेन चरावण मैं जळ जमना पाणी।
थे नन्दजी का लाल कहावो मैं गोपी मस्तानी ॥ ३ ॥
जमनाजी के नीरां तीरां थे हरि धेन चराज्यो।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि नित बरसाणे आज्यो ॥४॥

चन्द्रसखी के भजनों का ज्यादा महत्वपूर्ण पहलू दूसरा ही है। राधाजी की सखी के रूप में कवि की आत्मा ने जो गीत गाए हैं उन पर ऊपर कुछ थोड़ासा प्रकाश डाला जाचुका है। दाम्पत्य भाव को लेकर रचे हुए भी चन्द्रसखी के कई भजन सुने जाते हैं। कृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा चलेजाने पर गोपियों ने उनकी अपने पति के समान ही आराधना की। वे उनके विरह में व्याकुल हो उठीं।

लिख भेजूं संदेसो आवो म्हारा बालमा के देस ।
लिखूँरी पतियाँ, भेजूँरी छतियाँ कागद काळी रेख ॥
चंपो फूल्यो, मरवो फूल्यो, फूल रह्यो चहुं देस ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि सांवरियो अवधेस ॥

कृष्ण मथुरा छोड़ कर एक बार भी गोकुल वापिस नहीं आए। अपने मनमोहन का मुखड़ा ब्रज की आँखें सदैव के लिए खो चुकीं। ऐसी परिस्थिति में ब्रज की युवतियों की प्रेम-सरिता ने बढ़ते बढ़ते महा समुद्र का रूप धारण कर लिया। उनका कृष्ण-प्रेम बढ़ते २ इतना बढ़ा कि वे अपने आपको भूल गईं।

मोरे नैणां में राम रस छाय रह्यो री ।
जळ विच कँवळ, कँवळ विच कळियां,
कळियां में भँवर लुभाय रह्यो री ॥ मोरे० ॥
जळ विच सीप, सीप बिच मोती,
मोती में जोती समाय रह्यो री ॥ मोरे० ॥
वन विच बाग, बाग विच बंगला,
बंगला में बालम बुलाय रह्यो री ॥ मोरे० ॥
चन्द्रसखी मोहन बिन देख्यां,
मोरो जीव अकुळाय रह्यो री ॥ मोरे नैना में० ॥

इस भजन में कृष्ण प्रेम ने व्यापकरूप धारण कर लिया है। यहाँ वह राम-रस के रूप में बदल गया है। कवि की आँखों में समाकर इसने उसको बहुत ऊँचा उठा दिया है। ऐसी ही दशा मीरां की हुई थी। वह "साँवर के रंग राती" मीरां अन्त में रामदीवानी हो गई थी। "भई री मीरां रामदिवानी मेरो दरद न जाणे कोय"। इसी रामरस की लीला ने कबीर को लाल कर दिया था। "लाल देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल"।

उपरोक्त पद चन्द्रसखी का सर्वश्रेष्ठ पद है। उसके नैनों में रामरस समाया हुआ है, कली में छिपे हुए भौंरे के समान, अथवा मोती में रमे हुए लावण्य के समान। उसका "बालम" दूर जनसाधारण की दृष्टि से दूर—वन में बाग और बाग में बंगला उस बंगले में उसका प्राणवल्लभ बैठा उसको बुला रहा है। यह रहस्यमयी नायिका अपने रहस्यमय प्रियतम से मिलने के लिये जारही है।

अन्य विविध विषयों पर भी चन्द्रसखी के भजन सुनने में आते हैं। उनमें भी वही सादगी और सरलता है।

करमन की गत न्यारी
मैं किस विध लिखूं मुरारी
उज्वल पंख दयो वगुले को, कोयल करदयी कारी
छोटे छोटे नैण दिये हस्ती को, सोने की अम्बारी
बड़े बड़े नैण दिये मिरगे को, बनबन फिरत सिकारी
चातुर नार झुरे पुत्रन को, मूरख जण जण हारी
मूरख राजा राज करत हैं पंडित भये भिखारी
वेश्या ओढे साल दुसाला पतिवरता नार उघारी
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि, तन मन जावूं वलिहारी ॥

चन्द्रसखी के भजनों में एक बात बहुत ज़्यादा ध्यान देने योग्य है। इन भजनों को भिन्न २ स्थानों के निवासी अपनी २ बोली के सांचे में ढाल कर उन्हें भिन्न २ प्रकार से गाते हैं। इसप्रकार चन्द्रसखी के एक ही भजन के कई रूप पाये जाते हैं। साधारण हेरफेर तो प्रायः सभी भजनों में मिल जायगा। परन्तु कई २ भजनों में तो बहुत ही ज़्यादा अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार इन जनता के गीतों का पाठ क्या होना चाहिये यह एक अत्यन्त कठिन समस्या है। इनके किस रूप को स्वीकार किया जाय और किसको अस्वीकार किया जाय यह साधारण प्रश्न नहीं। इन जनता के भजनों का किस "पुरानी पोथी" के अनुसार सम्पादन किया जाय कि यह गम्भीर समस्या हल हो सके? कुछ उदाहरण दिए जाते हैं जिनमें भजनों का रूप जनता ने वदल डाला है—

ए री मा बन्सीवारो कान्ह।
चन्द्र बदन मृग लोचन राधे पायो श्याम सुजान ॥
इतसे आई राधा रानी उतसे आए कान्ह।
अधबिच झगड़ो रोप दियो है मांगे दधी को डान ॥
कबके डाणी भये हो कान्हा कब हम दीन्हो डान।
नन्द महर घर गऊ चरावै सुणो अनोखो कान्ह ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे कुण्डल झलके कान।
मुख पर मुरली अधिक विराजे केसर तिलक लुभान ॥
सुरनर मुनिजन ध्यान धरत हैं गावत वेद पुरान।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि दरसण दीज्यो आन ॥

इसी भजन का दूसरा रूप देखिये—

एरी मा वंसीवारो कान्ह ।

चन्द वदन मृगलोचन राधे मोह्यो श्याम सुजान ॥
गढ़ मथरा की गूजरी, गढ़ गोकल को कान्ह ।
अध विच झगड़ो मांडियोसरे मांगे मही को दान ॥
कव के तो तुम दानी भये कव हम देती दान ।
वावा नन्द की धेन चरावे, देख्यो अनोखो कान्ह ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल झलके कोन ।
मुखड़े ऊपर मुरली सोहे, केसर तिलक लुभान ॥
जमना के नीरे तीरे रास रच्यो है वन्सी में सुर ग्यान ।
वन्सी वजा मेरो मन हर लीन्यो मार विरह को वान ॥
सुरनर मुनिजन ध्यान धरत है, गावत वेद पुरान ।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि हरिचरणां मेरो ध्यान ॥

दूसरे भजन का उदाहरण देखिये—

स्याम की वन्सी वन पाई

उठोरी जसोदा खोलोनी किंवाड़ी, मैं वन्सी घर देवण कूं आई
वहुत दिनन के उनींदे मोहन सोवण दे वृखभाण की जाई
इतनी सुणके जगे हैं मोहन वन्सी के संग मेरी पूंची चुराई
कानां सुणी नहीं, नैन नहीं देखी, चालो री तो देऊं ठौड़ वताई
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छिव, दोनूं पढे एकही चतुराई ।

इसी भजन का दूसरा रूप देखिए—

स्याम की वन्सी वन पाई

उठोरी जसोदा मैया खोलो री किंवाड़ी
मैं वन्सी घर देवण को आयी ।
बहुत दिन से सोये री मोहन
सोवण दे वृखभाण की जायी ।
इतनी सी सुण के निकस आए मोहन,
वन्सी के साथ मेरी पोथी चुरायी ।
मैं तो जाणै थी मेरो नान बचेगो
उल्टी स्याम मोरे चोरी लगायी ।

विन दुलड़ी वन्सी ना देवूं
इमें स्याम छोडो चतुरायी।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छिव,
हर चरणां में ध्यान लगायी।

एक भजन और देखिए—

दोष नहीं कुवजा कूं है सखी अपणो स्याम खोटो।
नौ लख धेन नन्द घर दूझै कांई माखन को टोटो॥
कुवजा दासी कंसराय की ओ नन्दजी को ढोटो।
कड़वी बेल की कड़वी तुंबड़ियां कोई छोटो कोई मोटो॥
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि कुवजा वड़ी हर छोटो॥

इसी भजन का दूसरा रूप देखिए—

कछु दोस नहीं कुवजा ने वीर अपणो स्याम खोटो।
आप न आवे, पतियां न भेजे कागद को कांई टोटो॥
विख री बेल के विख फळ लागे कांई छोटो कांई मोटो।
जमनाजी रे नीरे तीरे धेन चरावे हाथ चनण को सोटो॥
कुबजा चेरी कंसराय की वो नंदजी को ढोटो।
चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छबि कुवजा वड़ी हर छोटो॥

पाठ के समान ही चन्द्रसखी के भजनों में एक दूसरी उलझन और है। यह उलझन पहली उलझन से भी ज्यादा कठिन है। चन्द्रसखी के नाम ने लोगों के हृदय पर अधिकार जमा लिया, इसलिए लोग हर किसी भजन के अंत में उसका नाम देने लगे। "चन्द्रसखी भज वालकृष्ण छवि" यह पद बहुत ही ज्यादा सर्वप्रिय है। यही कारण है यह बहुत से ऐसे भजनों के अन्त में जुड़ा मिलता है जो निश्चय ही अन्य कवियों की रचना है। इसी प्रकार "तुलसीदास भजो भगवाना" उन भजनों में भी पाया जाता है जो तुलसी के नहीं है। ऐसे अनेक भजन सुनने में आते हैं जो कबीरदासजी के बनाए हुए नहीं हैं परन्तु उनके अन्दर यह पद जुड़ा हुआ रहता है "कहत कबीर सुणो भाई साधो" सर्व प्रियता के कारण ही "मीरां के प्रभु गिरधर नागर" फैल गया है। इसी प्रकार "सूरदास प्रभु" को समझिए। चन्द्रसखी के नाम से प्रचलित भजनों में कौन कौन से भजन ऊपर के लोगों के बनाए हुए हैं यह छँटाई बहुत ही कठिन है। हाँ, ऐसे भजन हैं अवश्य जिनमें चन्द्रसखी का नाम जरूर है परन्तु चन्द्रसखी जैसा रस नहीं।

चन्द्रसखी के भजनों के विषय में एक बात और रहती है। चन्द्रसखी के भजनों पर विशेष ध्यान देने से मीरां का चित्र सामने आजाता है। यद्यपि साहित्य संसार में मीरां का जो आदर और महत्व है उसके सामने चन्द्रसखी कुछ भी नहीं पर राजस्थान में लोकप्रियता के नाते चन्द्रसखी का नाम मीरां से भी ज्यादा है। परन्तु साधारण जनता में यह विश्वास फैला हुआ है कि चन्द्रसखी के नाम से जो भजन हैं वे मीरां के बनाए हुए ही हैं। शायद इसका कारण यही है कि "चन्द्रसखी" के भजनों को रचने वाले का नाम आदि विषय अज्ञात है। इसी कारण लोगों में यह झूठी धारणा फैल गई है। परन्तु मीरां के पदों में चन्द्रसखी के पदों की विचारधारा तो मिलती है हाँ, साथ ही साथ कई स्थानों पर शब्दावली भी विचित्र रूप से टकरा गई है। कुछ उदाहरण देखिए—

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै,
कुण्डल झलकत कान ॥ १ ॥ चन्द्रसखी०॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै,
कुण्डल की झकझोर ॥ १ ॥ मीरा० ॥
दादुर मोर पपीहा बोले,
कोयल करत किलोलारे ॥ २ ॥ चन्द्रसखी०॥
दादुर मोर पपीहा बोले,
कोयल सबद सुणाई ॥ २ ॥ मीरा० ॥
जमना के नीरे तीरे धेन चरावे,
मधरी सी बैण बजाय के ॥ ३ ॥ चन्द्रसखी०॥
जमना के नीरे तीरे धेन चरावे,
बंसी में गावे मीठी बानी ॥ ३ ॥ मीरा० ॥
दिन नहीं चैन रैन नहीं निदरा,
अन्त विरह की पीर ॥ ४ ॥ चन्द्रसखी० ॥
दिन नहीं भूख रैन नहीं निदरा,
यूं तन पल पल छीजै ॥ ४ ॥ मीरां० ॥
टेढ़ो ही टेढ़ो मोर मुकुट है,
मेरी तो टेढ़ी लाल सिर की इंडुरिया।
टेढ़ो ही टेढ़ो पचरंग पेचो,
मेरी तो टेढ़ी लाल सुरख चुनरिया ॥चन्द्रसखी०॥
वारिज भवां अलक टेढ़ी,
मनों अति सुगन्ध रस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी कर मुरली,
टेढ़ी पाग लर लटके ॥ मीरा० ॥

इनके अतिरिक्त साधारण जनता में मीरां के जो भजन गाए जाते हैं जिन के अन्त में मीरां का नाम न रख कर चन्द्रसखी 'भज बाल कृष्ण छिब" जोड़ दिया जाता है। एक नमूना देना अनुचित न होगा—

कोई कहियो रे मोहन आवन की,
आवन की मन भावन की। टेक।
आप तो जाय दुवारका छाये,
हमको जोग पठावण की।
आप न आवे पतियां न भेजे,
बात करे ललचावन की।
ये दोउ नैण कह्यो नहीं माने,
घटा उमड़ रही सावण की।
दिल चाहत उड़ जाय मिलूं,
पर पांख नहीं उड़जावण की।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि,
चरण कमल लिपटावण की।

यही भजन मीरां के शब्दों में:—

कोई कहियो रे प्रभू आवन की,
आवन की मन भावन की।
आप न आये लिख नहीं भेजे,
बाण पड़ी ललचावन की।
ए दोउ नैण कह्यो नहिं माने,
नदी बहै जैसे सावण की।
कहा करुं कछु नहिं बस मेरो,
पांख नहीं उड़ जावण की।
मीरां कहै प्रभू कब रे मिलोगे,
चेरी भई हूं तेरे दावन की।

कहना न होगा कि चन्द्रसखी राजस्थान के मधुरतम कवियों में एक है। उसके पदों में राधामाधव की लीलाएं, कृष्ण के बाल चरित्र, ब्रज युवतियों की विरह-वेदना और रामरस की तीव्रता—सभी उत्कृष्ट रूप में पाई जाती हैं। चन्द्रसखी जनता की चीज है और आशा है जनता इस अपनी चीज को उचित रूप में सम्मान देगी।

सदयवत्स-सावलिंगा की प्रेमकथा

[ले०—अगरचन्द नाहटा]

कथा-कहानी मानव समाज की अत्यन्त प्रिय वस्तुओं में से एक है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी इनके कहने एवं सुनने में एक सा आनन्द अनुभव करते हैं। इसीलिए चिरकाल से अब तक इसका आकर्षण ज्यों का त्यों बनाहुआ है। रुचि की भिन्नता से अनेक प्रकार की कहानियों का जन्म एवं विकाश हुआ और कथा सरित्सागर जैसे विशाल कथा संग्रह-ग्रन्थों का निर्माण हुआ। इनमें से कई कहानियों पर तो पचासों साहित्यकारों ने कलम चलाई एवं कई कहानिएं भारत में ही नहीं विश्व भर में व्याप्त होगई।

मानव जीवन के निर्माण में भी कहानियों का बहुत बड़ा हाथ है। यद्यपि कहानियों के लोकप्रिय होने का प्रधान कारण तो मनोरंजन है पर उनका परम्परा फल बुद्धि का विकाश एवं जीवन-निर्माण की कला की गुप्त रूप से शिक्षा देना है। हम जैसी कथाओं का श्रवण या वाचन करेंगे उनकी छाप हमारे हृदय पर अंकित होतीं रहेंगी और समय समय पर उनसे प्रेरणा मिलती रहेगी। हमें कब क्या करना चाहिए? जीवन को किस तरह बिताना चाहिए? इसकी शिक्षा हमें अपने समय के एवं निकट सम्बन्धी व्यक्तियों के जीवन व्यवहार से और पूर्व पुरुषों की कथाओं द्वारा ही अधिक रूप से मिलती है। रामायण आदि कथा ग्रन्थों का भारतीय-जीवन-व्यवहार पर कितना गहरा एवं व्यापक असर पड़ा है यह सब पाठकों से छिपा नहीं है। अपने बाल्यजीवन की मधुर-स्मृतियों में शाम होते ही लाभू बाबा एवं भौजाइयों आदि से कहानियां सुनने के लिए आतुर हो उठने की बात आज भी याद कर मैं आनन्द विभोर हो उठता हूं।

वैसे तो सभी प्रांतों में कहानियों का प्रचुर प्रचार रहा है। पर राजस्थान में वह और भी अधिक देखा जाता है। राजस्थानी भाषा का गद्य साहित्य मुख्यतः ख्यातों और बातों के रूप में ही उपलब्ध है और वह इतना विशाल है कि जैन-भाषा साहित्य को छोड़ कर किसी भी भाषा में प्राचीन गद्य उतना नहीं मिलेगा। राजस्थानी बातों में विविध विषय एवं शैली की सैकड़ों कथायें लिखित रूप में मिलती हैं,

और मौखिक बातों का संग्रह किया जाय तो कथा सरित्सागर जैसे कई भाग सहज ही में तैयार हो सकते हैं। राजस्थान में कथा कहने का ढंग बड़ा ही निराला है, मेरे ख्याल से वह विशेषता भारत में अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। वर्तमान शहरी जीवन एवं शिक्षा पद्धति ने हमारे कहानीमय आनन्दित जीवन को गहरा धक्का पहुंचाया है। पर गांवों में आज भी जाइए आप उन्हें सुनकर प्रफुल्लित हुए बिना नहीं रहेंगे। ५-१० व्यक्ति इकट्ठे होकर किसी गुणी-कहानी कहने वाले को प्रोत्साहित करके मना देखिए। सबसे पहले तो वह आप से पूछ बैठेगा कि क्यों भाई! कैसी कहानी सुनाऊं—ज्ञान की या वैराग्य की, प्रेम की या वीरता की, नीति या धर्म की, छोटी या बड़ी अर्थात् उसकी स्मृति में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। आपकी रुचि के अनुकूल ही वह बात सुना सकेगा। वह कहानी प्रारम्भ करने के पूर्व "हांकारा" देते रहने की ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित कर नमक-मिरच लगाते हुए स्थान २ पर उपकथाओं एवं सुभाषितों से कहानी को द्रौपदी के चीर की भांति लम्बा करता चला जायगा। उसके कथन में ऐसा अद्भुत रस-निर्झर प्रवाहित होगा कि आपकी नींद स्वयं उड़ जायगी। वह कहता ही चला जाय और आप सुनते ही रहें बस यही इच्छा बलवती होती रहेगी। रात बीत जायगी पर कहानी समाप्त हो या न भी हो—कहानी सुनते हुए आपको तनिक भी समय का भान नहीं होगा। यही तो कहानी कहने की कला है।

अच्छे कहानीकार के आगे रात के १—२ बज जाना तो मामूली बात है। सुनीहुई परिचित कहानी को सुनने में भी कहानीकार की कुशलता से उसके कहने की शैली के आगे आप कभी ऊब नहीं सकेंगे और बीच २ नए प्रसंगों की कड़ी जोड़ कर वह कलाकार उसे नया बाना पहना देगा। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे उन अनमोल कथा-रत्नों के पारखी एवं कथा-प्रेमी ग्राहक दिनोदिन घटते जारहे हैं अतः कहानियों एवं कलाकारों का दुःखद अन्त हमारे सन्मुख उपस्थित है। सांस्कृतिक विरासत के संभालने के कर्त्तव्य के नाते हमें उसकी रक्षा करने की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। हमारे मौखिक साहित्य—लोक गीत, डिंगल-गीत, दूहे, भजन, पवाड़े एवं कहानियों की सुरक्षा की ओर आप सभी का

विशेषतः सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट १ का ध्यान आकर्षित करता हुआ अब मैं मूल विषय पर आता हूं।

राजस्थान की प्रसिद्ध सैकड़ों लोक कथाओं में **"सदयवत्स सावलिंगा"** की प्रेम कथा का प्रचार कई शताब्दियों तक बहुत अधिक रहा। इस कथा की पचासों प्रतियों एवं विविध रूपांतरों की उपलब्धि से इस कथन की भलीभांति साक्षी मिल जाती है। साहित्यान्वेषण के प्रसंग के कारण मैं इस कथा से वर्षों से परिचित हूं पर इस कहानी पर भी कभी अन्वेषण का प्रसंग आयगा यह गत वर्ष से पूर्व कभी विचार तक नहीं आया। ५ वर्ष हुए जैन कथा साहित्य पर मेरा एक लेख जैन सिद्धान्त भास्कर वर्ष ११ अं० १ में प्रकाशित हुआ और लगते हाथ ही टीकमगढ़ से प्रकाशित लोकवार्त्ता के लिये "लोक कथाओं संबन्धी जैन साहित्य" लेख भी तैयार करलियागया पर उक्त उपयोगी पत्रिका के बंद होजाने से उसे नागरीप्रचारिणी पत्रिका को भेज दियागया और काफी देरी से गतवर्ष वैशाख के अंक में वह प्रकाशित हुआ है। उसे पढ़ कर ता० १-१०-४७ के पत्र में माननीय डा० **वासुदेवशरणजी** अग्रवाल ने मुझे निम्नोक्त प्रेरणादायक सूचना लिख भेजी—

वैशाख आषाढ़ की ना० प्र० पत्रिका में लोक कथा सम्बन्धी जैन साहित्य वाले सुन्दर लेख में आपने सदयवच्छ चरित्र का उल्लेख किया है जिसकी रचना हर्षवर्धन ने सं० १५१० के लगभग की। पृ० ११ पर आपने सदयवत्स सावलिंगा चौपाई का उल्लेख किया है। क्या दोनों कथाएं एक हैं? जैन साहित्य-संशोधक के किस अंक में वह लेख छपा है। मैं उस अंक को देखना चाहता हूं। कृपया इस सदयवच्छ कथा पर यदि आप के पास इसकी कोई हस्तलिखित प्रति हो तो एक लेख पत्रिका के लिए लिख दीजिए। मुझे इस कथा के दो उल्लेख मिले हैं, एक तो पद्मावत में जायसी ने इस कथा का उल्लेख किया है। सुधाकर द्विवेदी वाला जो संस्करण है उसमें यही पाठ है। दूसरा प्राचीन उल्लेख संदेश रासक में है (पृ० १९) इससे ज्ञात होता है कि यह कथा १२वीं शती में ज्ञात

१. प्रस्तुत निबन्ध इसी इन्स्टीट्यूट के वार्षिक अधिवेशन में जो कि डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल के सभापतित्व में मनाया गया; लेखक द्वारा पढ़ा गया था।

थी। शिरफ ने जायसी कृत पद्मावत के अपने अंग्रेजी अनुवाद के पृ० १४४ की पाद टिप्पणी में सदयवच्छ पाठ का उल्लेख किया है।

डा० अग्रवालजी के उक्त पत्र का उत्तर उसी समय देदिया गया। उस समय तक भी इस कथा पर अनुसंधान कर लेख तैयार करने का उत्साह नहीं हुआ। डा० अग्रवालजी ने अपने दूसरे पत्र में फिर प्रेरणा की पर मेरे शीघ्र ही अपने व्यापारिक केन्द्रों के निरीक्षणार्थ बाहर चले जाने के कारण तत्काल कार्य न हो सका फिर भी वहां से लौटते ही इस कार्य को करने का निश्चय कर लिया गया। तदनुसार उधर से आते ही सर्व प्रथम अपने संग्रह की समस्त प्रतियाँ एवं ज्ञान भंडार की २ प्रतियां एकत्र कर मिलान किया तो कथा की विभिन्न प्रतियों से कथा के कई रूपान्तरों का पता चला। कथा-वस्तु एक होने पर भी वर्णन शैली एवं सदयवत्स के निवासस्थान आदि के नामों में काफी अंतर पाया। इन्हीं सब बातों को प्रकाश में लाने का प्रस्तुत लेख में प्रयास किया जारहा है।

माननीय अग्रवालजी ने अपने दूसरे पत्र में लेख तैयार हो जाने पर प्रकाशन से पूर्व "मुझे भेज दें" लिखा था। संयोगवश भेजने का मौका आने के पूर्व ही आपका बीकानेर में शुभागमन हो गया और तब आपके सभापतित्व में ही इन्स्टीट्यूट के उस अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था।

सदयवत्स कथा की प्राचीनता एवं प्रसिद्धि।

जैसाकि अग्रवालजी ने उपर्युक्त पत्र में निर्देश किया है प्रस्तुत प्रेम कथा काफी प्राचीन एवं प्रसिद्धि प्राप्त है। अद्यावधि प्राप्त उल्लेखों में अपभ्रंश भाषा का काव्य निर्माण करनेवाले एकमात्र मुसलमान कवि अब्दुलरहमान के संदेशरासक को ही सबसे प्राचीन कहा जा सकता है। उसने मुलताननगर का वर्णन करते हुये वहां के विलक्षण नागरिकजनों के साहित्यिक विनोद की चर्चा के प्रसंग में लिखा है कि—

णयरणासु सामोर सरोरुहदलनयणि,
णायरजणसंपन्नु हरिस ससिहरवयणि।
धवलतुंगपायारिहि तिउरिहि मंडियउ,
णहु दीसइ कुइ मुक्खु सयलु जणु पंडियउ ॥ ४२ ॥

विविहविअक्खण १सत्थिहि जइ पविसिइ णिरु,
सुम्मइ छंदु मणोहरु पायउ महुरयरु।
कह व ठाइ चउवेइहिं वेउ पयासियइ,
कह वहुरूवि णिवद्धउ रासउ भासियइं॥ ४३॥

कह व ठाइ सुदयवच्छ कत्थ व नलचरिउ,
कत्थ व विविहविणोइहि भारहु उच्चरिउ।
कह व ठाइ आसीसिय चाइहि दयवरिहिं,
रामायणु अहिणवियअइ कत्थ वि कयवरिहिं॥ ४४॥

उपर्युक्त उद्धरण को समझने में संभव है कुछ सज्जनों को असुविधा हो अतः उसका संस्कृत टिप्पण यहां देदिया जाता है—

तत्पृष्टः, पथिकः प्राह—'नयरु०'—हे हेम सरोरुह दल नेत्रे शशधर वदने सामोरू-मूलस्थान नाम नगरंवर्त्तते। कीदृशम्? नागरिकैः संपूर्णाम्, धवल-तुंगप्राकारैस्त्रिपुरैश्च मण्डितम्। अन्यश्च-यत्र कोऽपि न मूर्खः, किन्तु सकलोऽपि जनः पंडितः॥ ४२॥

यदि विचक्षणैः सह पुरान्तः परिभ्रम्यते, तदा मनोहरं छंदसा मधुरं प्राकृतं श्रूयते। कुत्रापि चतुर्वेदिभिः वेदः प्रकाश्यते। कुत्रापि बहुरूपिभि-र्निवद्धो रासको भाष्यते॥ ४३॥

कुत्रापि सुदयवच्छकथा, कुत्रापि नलचरित्रम्, कुत्रापि विविधविनोदैः भारतं उच्चरितं श्रूयते। अन्यच्च कुत्रापि कुत्रापि आशिषा त्यागिभिर्द्विजवरैः रामायणमभिनूयते॥ ४४॥

अर्थात् मुलताननगर के सभी नागरिक पंडित थे। विचक्षणों के साथ नगर में परिभ्रमण करने पर कहीं प्राकृत के मनोहर छंद सुनने में आते कहीं बहुरूपी लोग रासक करते थे कहीं वेद, सदयवत्स कथा नलचरित्र, भारत एवं रामायण सुनने में आते थे।

यहां नलचरित्र, भारत एवं रामायण के साथ **सदयवत्स कथा** का उल्लेख होने से उस समय यह कथा उन ग्रन्थों की भांति ही लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध थी, यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। म्लेच्छ देशोत्पन्न जुलाहे मीरसेन के पुत्र अब्दुल-रहमान का इस कथा का इस रूप में उल्लेख वास्तव में ही पंजाब की ओर इस कथा के प्रचारका महत्वपूर्ण निर्देश है। इनके परवर्ती मुसलमान कवि जायसी के पद्मावत

का उल्लेख इस कथा की प्रसिद्धि युक्तप्रान्त में भी इसी रूप में थी, सिद्धकरता है। राजपूताना एवं गुजरात में इसका बहुत प्रचार रहा है यह तो एतद्विषयक उपलब्ध साहित्य से विदित ही है।

प्रस्तुत कथा की प्राचीनता पर प्रकाश डालने के पूर्व संदेशरासक के रचना काल पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। हिन्दी काव्य धारा में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसका समय ई० १०१० बतलाया है और पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजयजी ने संदेशरासक के Preface में महम्मदगोरी से पूर्व १२ वीं १३ वीं शताब्दी का अनुमानित किया है पर मेरे नम्र मतानुसार ये दोनों अनुमान सही नहीं है। राहुलजी ने अपने कथन की पुष्टि में कोई सबल प्रमाण नहीं दिया अतः उस पर विचार करना व्यर्थ सा है। मुनि जिनविजयजी ने कवि के नगर वर्णन की ओर ध्यान आकर्षित किया है पर उसमें ऐसा कोई महत्वपूर्ण निर्देश नहीं जिसे परवर्ती कवि नहीं वर्णन कर सकता हो अतः मेरी राय अभी भी अपने ११ वर्ष पूर्व राजस्थानी पत्रिका के व. २ अं. २ में संदेशरासक का परिचय देते हुए उसे सं० १४०० के आसपास की रचना होना बतलाया था उसी के पक्ष में ही है। जिसका समर्थन प्राकृत भाषा के अधिकारी विद्वान् पंडित बेचरदास दोशी ने भारतीय विद्या के तृतीय भाग पृ. १७० में अपने "कवि अब्दुलरहमान कृत सन्देश रासक" लेख में एवं पं० केशवराम शास्त्री ने आपणा कविओ पृ. २२३ में किया है। अन्वेषण-प्रेमी श्री भोगीलाल सांडसेरा एवं भाषा-शास्त्र विद् श्री नरोत्तमदासजी स्वामी का भी यही मत है। अतः सन्देशरासक के उल्लेख से तो कथा की प्राचीनता १४ वीं शती तक पहुंचती है पर अन्य बातों पर विचार करने से इस कथा का इस से अधिक प्राचीन होना भी संभव प्रतीत होता है। सदयवत्स की अवस्थिति का समय निश्चित तो नहीं पर संस्कृत कथानक में जैनाचार्य कालक के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा है एवं कथा में उज्जयिनी, हरसिद्धिमाता (देवी), प्रतिष्ठान नगर व शालिवाहन राजा, बावनवीर, खापरा चोर आदि का उल्लेख है। तदनुसार विक्रम के समकालीन सिद्ध होता है अतः विक्रम कथाओं की जितनी ही इस कथा की प्राचीनता समझी जा सकती है।

सदयवत्स चरित सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थ।

सदयवत्स चरित सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थों का प्रारंभ १५ वीं शताब्दी से होता

है। प्राचीन गुजराती भाषा में रचित भीम कवि का सदयवत्स चउपई या प्रबन्ध ही उपलब्ध ग्रन्थों में सब से प्राचीन है। श्रीयुत् मोहनलाल दलीचन्द देशाई को प्राप्त सं० १६८२ की प्रति के अन्त में प्रस्तुत प्रबन्ध का रचनाकाल एवं स्थानसूचक पद्य इस प्रकार मिलता है—

संवत १५ पंचोतर नाम, पाटण नगर मनोहर ठाम।
भीम कविए रचिउ रास, भणइ भणावइ पूरी आस ॥ १७ ॥

पर अन्य प्रतियों में यह पद्य नहीं पाया जाता और सं० १४६४ की लिखित इस चउपई की प्रति उपलब्ध होने का कहा जाता है। भाषा की दृष्टि से भी इसका प्रारंभिक व गाथा छंद का भाग तो अपभ्रंश की झलक देता है अतः इसका रचना काल श्री केशवरामजी शास्त्री ने "आपणा कविओ" के पृ. ३१९ में एवं भोगीलाल सांडेसरा ने "वृत्तरचना' में सं० १४६६ माना है। शास्त्रीजी ने इस काव्य का परिचय देते हुए लिखा है कि दूहा पद्धड़ी, चउपई, वस्तु छप्पय, कुंडलिया एवं मौक्तिकदाम इन मात्रा मेल छंदों में ६७२ कड़ियों की यह प्रासाद युक्त रसमय सुन्दर कृति है। यद्यपि कवि ने इसमें ९ रस होने का उल्लेख किया है पर प्रधानता वीर एवं अद्भुतरस की ही है एवं शृंगाररस भी गौण रूप से पाया जाता है। धर्म से कवि का शैव होना ज्ञात होता है। इस प्रबन्ध की एक प्रति बीकानेर के कुं. मोतीचन्दजी खजाञ्ची के संग्रह में भी है। यह प्रति सं० १६६१ की लिखित (पत्र २६) है एवं इसमें ६८९ पद्य हैं। इसकी कथा जैनकवि हर्षवर्धन के संस्कृत सदयवत्स चरित्र के अनुसार ही है जब कि राजस्थान के अन्य सभी रूपान्तरों में कथा इससे भिन्न प्रकार से पाई जाती है।

सदयवत्स कथा का सर्वाधिक प्रचार राजस्थान में रहा प्रतीत होता है। केवल हमारे संग्रह में ही इस कथा की (राजस्थानी भाषा की) १२ प्रतियें उपलब्ध हैं। बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में १२, सरस्वती भंडार-उदयपुर में ५ कुंवर मोतीचन्दजी के संग्रह में २ वृहद् ज्ञान भंडार में ४ प्राप्त हैं। इसी प्रकार खोज

१. गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी अहमदाबाद से प्रो. मंजुलालजी मजूमदार से सम्पादित होकर प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित होनेवाला था पर अभीतक वह प्रकाशित नहीं हुआ।

करने से अन्य संग्रहालयों में भी अनेक प्रतियां मिल सकती है। राजस्थान में इस कथा का कितना अधिक प्रचार रहा है। इसका यह प्रबल प्रमाण है।

सदयवत्स कथा के विविध रूपान्तर

जैसा कि लोककथाओं एवं काव्यों में प्रायः हुआ करता है, बहुत से व्यक्तियों के हाथ में जाने से कथा के कई रूपान्तर हो जाया करते हैं मौखिक लोकप्रिय काव्यों की भी यही दुर्गति हुई है। पृथ्वीराज रासो, वीसलदे रास, आदि के विभिन्न संस्करणों के सम्बन्ध में पूर्व प्रकाश डाल चुका हूँ। भडुली, रुक्मणी मंगल आदि के संस्करणों पर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा। यहाँ सदयवत्स कथा के रूपान्तरों पर ही विचार किया जा रहा है।

प्राप्त सदयवत्स के कथा की विविध प्रतियों के अध्ययन करने पर भीम कवि का गुजराती भाषा का प्रबन्ध एवं हर्षवर्द्धन के संस्कृत चरित्र का कथानक एकसा मिला है और राजस्थानी भाषा की सभी कथाओं का कथानक उनसे बहुत ही भिन्न है यह ऊपर कहा जा चुका है अतः गुजरात एवं राजस्थान में इस कथा के दो भिन्न रूपान्तर प्रचलित थे, सिद्ध होता है। पंजाब एवं यू. पी. में रचित कोई सदयवत्स कथा सम्बन्धी ग्रन्थ जानने में नहीं आने के कारण वहाँ के कथानक की समता या विषमता के संबन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। राजस्थान में इस कथा का विशेष प्रचार होने के कारण कथा मूलतः एक होने पर भी भिन्न २ व्यक्तियों के द्वारा मौखिक रूप से कहे एवं लिखेजाने के कारण -उनमें भी एकता नहीं हैं। वैसे तो हमारे संग्रह की १२ प्रतियों में सभी में कुछ भिन्नता है पर शैली की भिन्नता पर ही लक्ष्य देने पर वे ५ रूपान्तरों में विभक्त हो जाती हैं। पाठकों की जानकारी के लिये उनके आदि अंत के उद्धरण परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी एवं उदयपुर आदि की कई प्रतियों में उन ५ रूपान्तरों से भी भिन्नता पाई जाती है। अतः राजस्थानी भाषा की कथाओं में शैली भिन्नता की दृष्टि से भी १०।१२ प्रकार के रूपान्तर प्रचलित थे, यह कहा जा सकता है। जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर आदि राजपूताने की अन्य रियासतों में प्रचलित इसी कथा की प्रतियों के मिलने पर कुछ और भी नवीन जानकारी मिल सकती है।

सदयवत्स कथा सम्बन्धी राजस्थानी रूपान्तरों में सबसे प्राचीन खरतरगच्छीय जैन कवि केशव अपर (दीक्षित)नाम कीर्ति वर्द्धन रचित सदेवच्छ-सावलिंगा की चौपाई है जिसकी रचना सं० १६६७ के विजयाशमी को प्रथमाभ्यास के रूप में की गई है। वास्तव में यह चौपाई भी कवि की स्वतंत्र रचना न होकर जनता में प्रसिद्ध दोहों आदि पद्यों को अपने धागे से माला बनाने रूप संकलन सा है। इसके कई पद्य भषा की दृष्टि से प्राचीन एवं उस समय जनता में प्रचलित से ज्ञात होते हैं। कवि ने बीच बीच में अपने पद्यों के साथ उनको भी यथास्थान जोड़ दिये हैं। इस चौपाई की भी प्रतियों के पाठ में बहुत कुछ कमी बेशी पाई जाती है। राजस्थानी भाषा के पिछले सभी रूपान्तर प्रायः गद्य-पद्यात्मक है। जिनमें से कईयों में दूहे अधिक हैं, गद्यांश कम है और कईयों में गद्यांश बहुत विस्तृत है इसीसे सक्षिप्त कथानक का परिमाण १५०।२०० श्लोक के लगभग का है और विस्तृत रूपान्तर २००० श्लोक तक का पाया जाता है।

पद्यबंध दूसरा गुजराती रास सं० १७८२ के महा सुदि ७ बुधवार का सूरत में कवि नित्यलाभ रचित है उसकी रचना केशव के रास के आधार से हुई ज्ञात होती है।

"जैन गुर्जर कविओ" भा० १. पृ० ४८६ में सं० १६५२ में लिखित एक सदयवत्स वीर चरित्र[1] का उल्लेख है पर प्रति को भलीभाँति देखे बिना उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार धर्मजय के सदयवत्स रास का भी केवल अंत पत्र मिलने से एवं रंगविजय कृत रास के अभी मेरे पास न होने से इन पर भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। जिनरत्न कोष में सदयवत्स प्रबन्ध का भिन्न रूप से उल्लेख है पर प्रति देखे बिना, वह ज्ञात कथाओं से भिन्न है या उन्हीं में से कोई है, ठीक कहा नहीं जा सकता। बीकानेर स्टेट लाइब्रेरी की २ प्रतियों में सदयवत्स की कथा सचित्र रूप से भी लिखी मिलती है अतः वह विशेष

१. आमेर भंडार से सदयवत्स चरित्र की प्रतिलिपि मिली है। सं० १६५२ वाली प्रति से इसका एक पद्य मिलता है अतः संभव है यही उसी की प्रतिलिपि हो। प्राप्त प्रति के अंत्य पद्य से इसके कर्त्ता का नाम पद्मतिलक ज्ञात होता है यथा.—पदमतिलक कीधी चुपई, हालइ सुहवई ए बुध कही, जांण म करियो रीस, कीधी छेहि चउपई बीस (६३४)

इस प्रति में प्रारम्भ के २१७ पद्य नहीं है। इसे सं० १७३१ में सोमप्रभ ने लिखा है।

रूप से उल्लेखनीय है। बृहद्ज्ञान भंडार की केशव रचित चौपाई वाली प्रति में भी चित्रों के स्थान में जगह छोड़ी हुई एवं जिस भाव के चित्र जहाँ जहाँ बनाने हैं उनका भी हाँसिये पर निर्देश किया हुआ है पर प्रथम चित्र के खाके के अतिरिक्त चित्र बन नहीं पाये।

स्वर्गीय चिमनलाल दलाल का ४२ वर्ष पूर्व सदयवत्स सावलिंगा की 'जैन कथा' शीर्षक लेख 'वसंत' नामक पत्र के सं० १९७२ के चैत्र अंक में प्रकाशित हुआ था जिसे मुनि जिनविजयजी ने जैन-साहित्य संशोधक के खंड १ अं० ३ में पुनः प्रकाशित किया था। उसमें श्रीयुत् दलाल ने लिखा है कि "सदेवच्छ सावलिंग नी कथा गुजराती मां आबाल वृद्ध जाणीती छे तेना आठ भवना नेह तथा विजोग नी वार्त्ता स्त्रीओ पण प्रेम थी वाचे छे "इससे गुजरात में अब भी उसका अच्छा प्रचार विदित होता है। आपने ८ भव के स्नेह सम्बन्ध वाली वार्ता का उल्लेख किया है उपलब्ध प्राचीन राजस्थानी कथा ग्रन्थों में तो पूर्ववर्ती केवल १,२ भव का ही वर्णन पाया जाता है अतः ८ भव का सम्बन्ध वार्ता में पीछे से जोड़ दिया गया सिद्ध होता है श्रीयुत सांडेसराजी ने गुजरात में जनसाधारण में प्रचलित ८ भव वाली उक्त कथा की १ प्रति मुद्रित भी भेजने की कृपा की और श्रीनरोत्तमदासजी स्वामी ने आधुनिक ७ भव वाली राजस्थानी लोककथा की छपी हुई पुस्तक दी जिनका परिचय आगे दिया जायगा। स्व० दलाल ने एक कर्त्ता नाम रहित सहदयवच्छ सावलिंगा चौपाई का भी निर्देश किया है पर उसकी प्रति कहाँ पर है ज्ञात न होने से वह भी हमारे उपर्युक्त रचनाओं में से ही कोई है या भिन्न है ? कहा नहीं जा सकता

एक बात का स्पष्टीकरण करना आवश्यक समझता हूँ कि हर्षवर्द्धन ने तो इस लोक कथा को अन्य जैन विद्वानों की भाँति जैन बाना पहना दिया है उसके उल्लेखानुसार सदयवत्स ने जैन श्रावक धर्म स्वीकार किया था। पर केशव ने उसे राजस्थान म प्रचलित लोक कथा ही रहने दी है।

सदयवत्स सावलिंगा की प्रेम कथा का गुजराती रूपान्तर।

उज्जयिनी के राजा प्रभुवत्स के महालक्ष्मी रानी से सदयवत्स नामक पुत्र हुआ। उसे द्यूत का कुव्यसन लगा हुआ था। प्रतिष्ठानपुर के राजा शालिवाहन के

सावलिंगा नामक पुत्री थी। उसके स्वयंवर में आने के लिये आमंत्रण मिलने पर राजा प्रभुवत्स ने मंत्री के साथ सदयवत्स को प्रतिष्ठानपुर भेजा। मंत्री कृपण होने से कुमार को खर्च के लिये आवश्यक द्रव्य नहीं देता था। स्वयंवर में सदयवत्स ने अपने गुण एवं कला से आकर्षित कर सावलिंग से विवाह कर लिया।

उज्जयिनी में महादेव नामक एक दरिद्र ज्योतिषी रहता था। स्त्री की प्रेरणा से एक दिन वह राजा प्रभुवत्स की सभा में उपस्थित हुआ। राजा ने उसका परिचय पूछा उसने कहा कि मैं ज्योतिष के बल से भूत, भविष्यत् और वर्तमान के शुभाशुभ को जानता हूँ। राजा ने उसके इस अभिमान से क्रुद्ध हो परीक्षार्थ अपने निकटवर्ती जयमंगल हाथी का आयुष्य पूछा। ज्योतिषी ने कहा यह कल दोपहर को मरजायगा। राजा ने क्रोधित होकर उसे कैद कर लिया और अपने नौकरों को जयमंगल हाथी की विशेष रक्षा करने की आज्ञा देदी। लोक ज्योतिषी की अवज्ञा करते हुए कहने लगे, देखो इस ज्योतिषी ने हाथी का मरण तो जान लिया पर अपने बंदीखाने में पड़ने की बात को नहीं जानी।

इधर वैद्यों की देखरेख में जयमंगल की विशेष सुरक्षा की व्यवस्था हो चुकी थी पर भवितव्यतावश दूसरे दिन दोपहर के समय हाथी मदोन्मत्त हो भाग निकला और बाजार में उपद्रव मचाने लगा। इसी समय एक सगर्भा ब्राह्मणी के अधरणी उत्सव का वरघोड़ा उसके पीहर से ससुराल जारहा था, वहाँ वह हस्ति आ पहुंचा। उत्सव में सम्मिलित लोग भाग खड़े हुवे पर ब्राह्मणी गर्भभार के कारण भाग न सकी अतः हाथी ने उसे पकड़ली। यह देखकर उसके पति ने चिल्लाते हुए उसकी रक्षा करनेवाले को हार आदि देने की उद्घोषणा की। सदयवत्स की दृष्टि भी उस ओर पड़ी और उसने हाथी को मारकर ब्राह्मणी की रक्षा की। इससे प्रसन्न हो प्रभुवत्स राजा ने कुमार को युवराज पद देने का निश्चय किया। स्वयंवर में साथ जानेवाले मंत्री ने कुमार को युवराज पद मिलता देख विचार किया कि मैंने इसे आवश्यक द्रव्य व्यय के लिये नहीं दिया था संभव है वह उस वैर का बदला मुझ से ले। अतः इसे युवराज पद नहीं मिले ऐसा सोच राजा को उल्टी मंत्रणा दी कि कुमार ने एक साधारण स्त्री की रक्षा करने के लिये "जयमंगल" जैसे राजमान्य हाथी को मार डाला यह उचित नहीं किया। राजा को मंत्री की बात जच गई

उसने कुमार के कार्य को अनुचित समझ कर उसे राज्य छोड़कर चले जाने की आज्ञा देदी।

कुमार ने भी अपमान होने से अब वहां रहना उचित नहीं समझा और जाने की तैयारी करली। माता ने समझाया पर उसने नहीं माना। सावलिंगा भी उसके साथ हो गई। चलते चलते वे एक रन में आ पहुंचे वहाँ सावलिंगा को जोरों से प्यास लगी कुमार पानी की खोज में इधर उधर घूमते हुए एक प्रपा नजर आई। पानी लेने के लिये पास पहुंचने पर प्रपापलिका वृद्धा ने कहा यह हरसिद्धि माता की प्रपा है। जितना पानी लोगे उतना ही खून देने की शर्त से ही जल ले सकते हो। कुमार ने सावलिंगा के प्रेमवश यह शर्त्त स्वीकार कर पानी लेजा कर सावलिंगा को पिलाया। वृद्धा भी साथ गई और खून मांगा। कुमार शिरच्छेद करने को उद्यत हुआ। इससे देवी ने प्रसन्न हो वर मांगने का कहते हुए कहा कि मैंने ही तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये यहाँ जंगल की रचना की है और मैं उज्जैन एवं प्रतिष्ठाननगर की कुलदेवी हूं। कुमार ने संग्राम एवं युद्ध में जय होने का वरदान मांगा।

देवी ने सारियों के द्यूत में जय होने के लिये दो पासे, कपर्दक द्यूत में जय के लिये कपर्दिकायें और संग्राम में जय होने के लिये लोहछुरिका दी। आगे चलते हुए स्त्रियों के समूह के बीच में एक कुमारिका को ध्यान करते हुए देखकर साव-लिंगा ने उसके पास जाकर वृत्तान्त पूछा। कुमारिका ने कहा यहाँ से ५ कोस पर स्थित द्वारावतीनगरी के राजा धारावीर की स्त्री धारिणी की मैं लीलावती नामक पुत्री हूं। बन्दीजनों के मुख से सदयवत्स का गुण श्रवण कर उसे पाने के लिये इस कामि-तप्रद तीर्थ में ६ महीने से ध्यान कररही हूं। सदयवत्स के न मिलने पर कल चिता में जल मरूंगी। सावलिंगा ने यह वृत्तान्त सदयवत्स को कहा। कुमार सबके साथ नगरी में आया और लीलावती से विवाह कर उसकी इच्छा पूर्ण की। इसी समय धर्मघोष नामक जैनाचार्य वहां पधारे और "थोड़ा बहुत भी धर्म जरूर करना चाहिये" ऐसा उपदेश देते हुये मृगांक की कथा कह सुनाई। सदयवत्स ने उसे सुनकर श्रावकधर्म स्वीकार किया। लीलावती को पितृगृह में ही रखकर सावलिंगा के साथ कुमार आगे चला। रास्ते में एक पर्वत पर शिला से ढकी हुई गुफा देखी, दोनों ने कौतूहलवश भीतर

प्रवेश किया तो उस में ५ चोर बैठे देखे। चोरों ने सदयवत्स को अकेला देख उसे मारकर सावलिंगा को ग्रहण कर लेने का विचार किया। उन्होंने द्यूत रमने के लिये सदयवत्स का आव्हान किया और जो हारे उसे मस्तक देना पड़े यह शर्त रखी गई। देवी के वरदान से सदयवत्स जीता पर सज्जनता एवं दयावश उनका शिर छेदन नहीं किया इससे चोर प्रभावित हुए। और अदृष्टांजन, संजीवनी रससिद्धि आदि विद्यायें देने का कहा पर कुमार ने उन्हें नहीं ली। फिर भी एक चोर ने गुप्तरूप से कुमार के उत्तरीय वस्त्र के छोर से पद्मिनिपत्र वेष्टित लक्ष मूल्य का कंचुक बांध दिया। चोरों ने यह भी कहा कि कभी आप संकट में पड़ जायं तो हमें स्मरण करते ही हम आकर आपकी सहाय करेंगे।

कुमार आगे चलते हुए एक निर्जन नगर में पहुँचा। राजभवन के समीप आने पर एक स्त्री का रोना सुन कर उसके पास जाके रोने का कारण पूछा। उसने कहा मैं नंद राजा की लक्ष्मी हूँ, अनाथ होने से रोरही हूँ, तुम मेरे स्वामी बन जाओ। नगर का निर्जन होने का कारण पूछने पर लक्ष्मी ने कहा कि इस वीरपुर नगर में एक तापस आया था। वह ब्रह्मचारी था। लोगों पर प्रभाव जमाने के लिये स्त्री का स्पर्श होजाने पर बड़ा गुस्सा दिखलाने का ढोंग करता था। एक वार नगरी की वेश्या ने उसका स्पर्श किया, इससे उसने राजा के पास फरियाद की। वेश्या ने उसे ढोंगी बतलाया। राजा ने उसकी परीक्षा के लिये उसे महल में लाकर रानी के संसर्ग में अधिक रूप से आने की व्यवस्था करदी। रानी को देख कर वह कामातुर हो उठा और भोग के लिये प्रार्थना की। रानी जोर से चिल्लाई तब राजा ने आकर तापस को मारडाला। वह तापस मरकर राक्षस हुआ और पूर्वभव के वैर से नगरी की यह स्थिति करदी। लक्ष्मी ने कुमार को धन का ढेर पड़ा बतलाया। कुमार ने सावलिंगा से कहा कि यह धन अपने फिर कभी विधि विधानपूर्वक ग्रहण करेंगे। अभी तो प्रतिष्ठानपुर चलें। चलते चलते वे प्रतिष्ठानपुर के समीप आपहुँचे और पास के गांव में एक भट्ट के यहां जाकर ठहरे। ससुराल होने के कारण नगर प्रवेश के लिये योग्य वस्त्राभूषण लाने एवं रथनादि की व्यवस्था करने के लिये कुमार अकेला नगर में जाने लगा तब सावलिंगा ने कहा कि यदि आप ५ दिन में वापिस नहीं लौटे तो मैं चिता प्रवेश कर लूँगी। कुमार को नगर में प्रवेश करते हुए एक

टूंटक मिला। कुमार उसे अपशकुन समझ वापिस जाने लगा। टूंटक को यह बात अखरी और वह पुष्प एवं खाद्यादि मांगलिक वस्तुओं को लेकर पास में आकर कहने लगा कि मैं सिंहल के राजा का सुरसुन्दर नामक पुत्र हूँ। कौतुकवश ५०० हाथी एवं करोड़ स्वर्ण मोहर लेकर नगर देखने के लिये यहां आया था पर उनको मैं जूए में हार गया। जुआरियों ने मेरे हाथ कान भी काट डाले। दैव रूठता है वही जूआ खेलता है।

टूंटक के साथ कुमार ने नगर में प्रवेश किया। रास्ते में सूर्यप्रासाद में विवाद हो रहा था। विवाद का विषय यह था कि राज्यमान्य, कामसेन वेश्या ने स्वप्न में देखा कि श्रेष्ठि दत्तक के पुत्र सोमदत्त ने उसके घर आकर उससे भोग किया। अतः सोमदत्त से अपनी द्रम्म मुद्रा रूप में गर्हित कार्यों की शुल्क लेने के लिये वेश्या ने अक्का भेजी। श्रेष्ठि ने धन देने से इनकार किया। इसी कारण २ दिन से विवाद चल रहा था। कुमार को देख उसे इसका न्यायाधीश चुना गया। उसने श्रेष्ठि से कहा कि राजमान्य से विरोध करना उचित नहीं। अतः तुम इसे धन देदो। कुमार ने श्रेष्ठि से धन मंगा कर उसका आधा भाग लेने के लिये अक्का को कहा पर उसने आधा लेना स्वीकार नहीं किया तब कुमार ने एक दर्पण मगा कर उसके सामने धन रख दिया और प्रतिबिम्बित धन लेने के लिये अक्का से कहा। क्योंकि स्वप्न एवं प्रतिबिम्बित अवस्था समान ही होती है। इस न्याय से अक्का लज्जित हो बिलखती हुई लौट गई। कामसेना यह वृत्तांत जानकर नृत्य करने के बहाने सूर्यप्रासाद में आई और कुमार को देखकर मोहित होगई। उसने कुमार को अपने घर चलने को कहा। टूंटक ने जानें का निषेध किया कि वेश्या किसी की नहीं होती पर कुमार निर्भीकता से चलागया और ५ दिन उसके यहां रहा। कुमार नगर में जूआ खेलने गया और बहुत सा धन कमा लाया। उसमें से कुछ धन सावलिंगा के लिये आभूषणादि खरीद करने के लिये टूंटक को देदिया बाकी वेश्या को देदिया। ५ वें दिन कुमार ने वेश्या से जाने की आज्ञा मांगी। वेश्या ने रहने का बहुत आग्रह किया पर कुमार को सावलिंगा से वचनबद्ध होने के कारण जाना जरूरी था अतः रवाने हुआ। जाते समय वेश्या ने कुमार का उत्तरीय वस्त्र खेंचा तो उससे चोर का बांधा हुआ पद्मिनी वेष्टित कंचुक खुलपड़ा। वेश्या ने वेष्टन खोलने पर रत्नमय कंचुक

देख कर कुमार से मांगा और उसने वह उदारतापूर्वक देदिया। वेश्या उसे पहिन कर राजसभा में जारही थी, इसी समय एक सेठ ने कंचुक को देख यह अपना चोरा गया था वही है यह निश्चय कर राजा के पास इसकी फरियाद की। राजा द्वारा वेश्या को पूछने पर उसने कहा हमारे यहां अनेक चोरादि आते हैं मैं उनका नाम नहीं बतला सकती। तब राजा ने वेश्या को शूली की सजा का हुक्म देडाला। कुमार ने जब यह बात सुनी तो वह शूली के स्थान पर पहुँचा और कोतवाल को जाकर कहा "चोर मैं हूँ, वेश्या को छोड़दो" पर उसके नहीं छोड़ने पर जबरदस्ती उसे छुड़ादिया, राजा ने कुमार को पकड़ने के लिये अपनी सेना भेजी पर कुमार ने उसे भी हरा दी। उधर ५ दिन तक कुमार के न आने के कारण सावलिंगा ने चिता प्रवेश की तैयारी करली। कुमार ने यह सुनते ही अपने बदले सोमदेव को वहां छोड़ वापिस आने की प्रतिज्ञा कर वहां पहुँचा। और सावलिंगा को जलने से बचाया। प्रतिज्ञानुसार कुमार शूली स्थान पर वापिस आया। राजा ने ५२ वीरों को कुमार से युद्ध करने के लिये भेजा। नारद से यह सूचना पाकर कुमार के पूर्व परिचित ५ चोर वहां सहायतार्थ आ पहुँचे अतः ५२ वीर भी हार गये। राजा ने बल से काम निकलता न देख नम्रता से कुमार का नाम पूछा और उसके न बतलाने पर वेश्या से पूछा। तो वेश्या ने उसका नामाङ्कित खड्ग लाकर राजा को दिखलाया। राजा को छलने के लिये कुमार ने कहा इस तलवार को तो मैंने सदयवत्स से जूए में जीता था। राजा ने उसे वश में करने को गजघटा बुलाई उसे भी सिंहनाद द्वारा कुमार ने भगा दी। अन्त में राजा के अनुरोध से कुमार ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रगट किया तो राजा को उसे अपना जामाता ही जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपने पुत्र शक्तिसिंह को भेज कर सावलिंगा को भी बुला ली। कुछ समय तक दोनों बड़े आनन्दपूर्वक वहां रहे। इसी बीच सदयवत्स की मित्रता १ वनिक, १ क्षत्रिय एवं १ ब्राह्मण जाति के तीन व्यक्तियों से हो गई। इतने में ही एक विदेशी के मिलने पर कुमार ने पूछा कि कहीं कुछ कौतुक देखा हो तो कहो। उसने कहा तुम्बवन नगर में धनपति सेठ के मृत पिता बहुत समय हुए जला दिये गये थे, पर वे रात के समय जीवितअवस्था में घर पर आ जाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है। कुमार कौतूहलवश तीनों मित्रों के साथ वहां गया। तुम्बवन में

प्रवेश करते हुए एक ब्राह्मण कन्या को सीकोतरी पीड़ा दे रही थी, उसे छुड़ाकर उसका विवाह ब्राह्मण मित्र के साथ करदिया।

आगे चलकर मित्रों सहित कुमार सेठ के घर पहुँचा और अमुक धन लेने का तय कर वे उसके पिता का शव जलादेने के लिये श्मशान लेगये। उसे प्रातःकाल जलाने का निश्चय कर रात को १ - १ प्रहर बारी बारी पहरा देने की व्यवस्था करलीगई। पहली बारी वणिक की थी। पहरा देतेहुए उसे एक स्त्री के रोने की आवाज़ सुनाई दी। वणिक शव को अपनी पीठ पर बांध स्त्री के पास गया और रोने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा मेरा पति शूली पर लटका हुआ है मैं उसके लिये थाली में भोजन लाई हूं पर शूली के ऊँची होने के कारण उस तक पहुँच नहीं सकती इसी दुःख से रो रही हूँ। वणिक ने करुणावश उसे पीठ पर चढा कर ऊँची कर दी। स्त्री ने ऊंची चढकर शूली पर लटकेहुए पुरुष का मांस खाना शुरू करदिया जब एक मांसखंड वणिक के ऊपर पड़ा तब उसने उसको नीचे गिरादिया। पड़ते ही वह स्त्री भागने लगी पर वणिक ने उसका पीछा कर एक हाथ काटडाला और उस हाथ को बालुका में डाटदिया। दूसरे पहर में ब्राह्मण ने एक राक्षस द्वारा एक राजकुमारी को लेजाते हुए देखा। राक्षस को राजकुमारी से भोग की प्रार्थना करते देख पीछे से ब्राह्मण ने उसे मारडाला। तीसरे पहर क्षत्रिय की बारी थी। शव को जलाने के लिये वह अग्नि लेने की खोज में निकला तो उसने भूतों को खीर पकाते देखा। उनके पास ७ पुरुष खिचड़ी के साथ साग की जगह खाने के लिये बँधेहुए थे। क्षत्रिय पुत्र ने भूतों को डराकर भगा दिया और पत्थर मारकर खिचड़ी की हांडी को फोड़डाला। बँधेहुए ७ पुरुष राजकुमार थे।

चौथे प्रहर सदयवत्स उठा तो शव ने उसे जूआ खेलने को आह्वान किया। शव में रहे हुए वैताल ने अपने बाहु प्रसारित कर एक राजमहल में से जूआ खेलने की सामग्री उठाकर लेली। जो हारे उसका मस्तक छेदन कर दिया जाय। इस प्रतिज्ञा पूर्वक साथ वैताल को जीत कर कुमार ने शव को जला दिया। प्रभात में श्रेष्ठि के पास जाकर पूर्वनिश्चित धन मांगा। श्रेष्ठि ने कहा कल खातरी करके दूँगा। कुमार ने राजा के पास फरियाद की और रात का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा के प्रमाण मांगने पर बालू में दटाहुआ हाथ उपस्थित किया और वह हाथ रानी का होने से रानी सीकोतरी साबित हुई। राजकुमारी व राजकुमारों को भी उपस्थित कियागया। श्रेष्ठि ने कुमार को अपनी कन्या व्याह दी।

सदयवत्स वहां से वापिस लौटते हुए निर्जन नगर को जिसे पहले देख आया था वहां गया वहां राक्षस की आराधना कर "वीर कोट" नामका नगर बसाया। सदयवत्स के लीलावती रानी से बनवीर और सावलिंगा से वीरभानु नामक पुत्र हुए।

सदयवत्स ने चतुर्थी को संवत्सरी करनेवाले जैनाचार्य कालकसूरि के हाथ से अपने बसाये नगर के जैनमंदिर की प्रतिष्ठा करवाई। इसी समय उज्जयिनी, जोकि अपनी मूल राजधानी थी, पर शत्रुओं के ६ महिनों से घेरा डालने की बात सुन कर कुमार ने ससैन्य वहां जाकर शत्रुओं को परास्त किया। प्रभुवत्स राजा ने सदयवत्स को उज्जयिनी का राज्य दिया। वीरकोट का नवीन स्थापित राज्य राजकुमारों को सौंप दिया गया।

अन्यदा कालकाचार्य उज्जैनी में पधारे और पूछने पर सदयवत्स का पूर्वभव कह सुनाया कि तू विंध्याचल की पल्ली के गोत्रक नगर में व्याघ्र राजा की धारलदेवी रानी के गुणसुन्दर नामक सरलस्वभावी एवं दयावान पुत्र था। श्यामाचार्य के पास जीवदया व अभयदान का उपदेश श्रवण कर उसने सम्यक्त्व सहित श्रावकोचित १२ व्रत ग्रहण किये। गुणसुन्दर मुनियों को अन्नादि का दान और प्राणियों को अभयदान देने में सदा तत्पर रहता था। एक बार उद्यान में क्रीड़ा करते हुए उसे ४ पुरुष मिले। उन्होंने कहा कि वैतालपुर नगर में देवी के बलिदान के लिये हमें पकड़ा गया था पर हम वहां से भाग कर यहां आगये हैं। वहां के लोग बड़े निर्दयी हैं और मनौती मानकर थोड़े से स्वार्थ के लिये भैंसे और विशेष कार्य से मनुष्य तक की बलि दे देते हैं। गुणसुन्दर का हृदय करुणार्द्र हो गया अतः वहां जाकर बलि देनेवाले लोगों को भगाकर मनुष्यों को बचाया और अपनी बलि देने के लिये कंठ पर तलवार का प्रहार करने लगा देवी ने उसके धैर्य एवं साहस से प्रसन्न हो उसका हाथ पकड़ा। तब उसने देवी को प्रतिबोध देकर सदा के लिये बलिप्रथा बंद करवा दी। मृत्यु समय में आराधन करने से तुम इस जन्म में सदयवत्स हुए। जीव दया व अभयदान के पुण्य से प्रबल पराक्रम और मुनि दान के फल से सब प्रकार के भोग प्राप्त किये। अपना पूर्व वृत्तान्त सुन सदयवत्स को पूर्व-भव स्मरण हो

आया। वह श्रावक धर्म के आराधन में विशेष मनोयोग देता हुआ स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

कवि हर्षवर्द्धन के संस्कृत सदयवत्स कथा का संक्षिप्त सार स्व० चिमनलाल दलाल ने गुजराती में लिखा है उसीका हिन्दी भाषान्तर ऊपर दिया गया है। मूल संस्कृत ग्रन्थ छप भी चुका है पर लेख लिखते समय वह प्राप्त न होसका। इसकी एक प्रति सं० १५२८ की लिखित जैसलमेर के खरतराचार्य शाखा-भण्डार में हमारे अवलोकन में आई थी।

वर्त्तमान में गुजरात में जो ८"भववाली सदेवंत सावलिगा नी वार्त्ता" प्रसिद्ध है उसके दो संस्करण हमारे पुस्तकालय में है। पहला सं० १९७९ में बुकसेलर कुंवरजी भीखाभाई ने भावनगर से (पे० १५८) प्रकाशित किया था। दूसरा सन् १९४७ में महादेव रामचंद्र जागुष्टे बुकसेलर, त्रण दरवाजा, अहमदाबाद से (पृ० ८० का) प्रकाशित है।

कथा का राजस्थानी संस्करण ७ भवों वाला है इसे मूंडवे के शाह शिवकरण दरक ने गद्य के साथ ५३० दूहों एवं ११ प्रकाश में तैयार किया है। संवत् १९६१ में खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई ने इसे प्रकाशित किया है।

राजस्थानी रूपान्तर

राजस्थान में प्रचलित सदयवत्स कथा में केशव की प्रति सबसे प्राचीन है अतः तुलनात्मक विचार करने के लिये यहां उसका सार देदिया जाता है।

पूर्व दिशा के कोंकण देशस्थ विजयपुर में महाराजा महीपाल राज्य करते थे। उनका पुत्र सदयवच्छ था। राजा के मन्त्री सोम के सावलिंगा नामक पुत्री थी। योग्य वय होने पर महाराजा ने पंडित को बुला विद्याध्ययनार्थ कुमार को उसके सुपुर्द कर दिया। इसी प्रकार मन्त्री सोम ने सावलिंगा को भी पढ़ाने के लिये उन्हीं की पाठशाला में भेज दिया और उसे पाठशाला के छात्रों से अलग रखकर पढ़ाने का निर्देश कर दिया। सावलिंगा की पढ़ाई पर्दे में होने लगी। राजकुमार के पूछने पर पंडितजी ने उसके पर्दे में पढ़ने का कारण उसका अन्धी होना बतलाया और कुमारी को कुमार का कोढ़ी होना कहदिया जिससे परस्पर कोई सम्बन्ध न हो सके। एक दिन किसी कारण से पंडितजी नगर में गये थे और सबको पढ़ाने का काम कुमार को

सौंप गये। पढ़ते हुए परदे में स्थित कुमारी ने कोई पाठ अशुद्ध बोला तब कुमार ने कहा अन्धी! अशुद्ध क्यों बोल रही हो? प्रत्युत्तर में कुमारी ने कहा—कोढ़ी जैसा पाटी मे लिखा है वैसा ही पढ़ रही हूं। कुमार का भ्रम इस उत्तर से दूर हो गया उसने सोचा गुरुजी के कथनानुसार कुमारी यदि अन्धी है तो पाटी पर लिखा वह पढ़ने की बात कह नहीं सकती और मुझे कोढी कहने का कारण भी क्या? अतः हम दोनों एक दूसरे को देख न सकें इसीलिये गुरुजी ने भ्रम फैला रखा है। भ्रम दूर होते ही कुमारको कुमारी के देखने की उत्कंठा बढ़ी और एक दूसरे को देख करके प्रेमसूत्र में बँधगये। फिर परस्पर दूहा-गूढादि लिखते व कहते रहने के द्वारा प्रीति दृढ होती गई।

गुरुजी के बाग में खेत थे उसकी रखवाली के लिये बारी २ से शिष्य वहां जाया करते थे। नियमानुसार सदयवच्छ अपनी बारी पर खेत पहुंचा और सावलिंगा उसे भाता (भोजन) देने खेत गई। वहां एकान्त होने से प्रीति विशेष रूप से दृढ होगई सावलिंगा ने किसी के भी साथ विवाह होने पर पहली रात उसके साथ रमण का वादा किया।

शिक्षा समाप्त होने पर यौवनावस्था देख राजा ने सदयवच्छ का विवाह किसी राजकन्या से कर दिया और सावलिंगा के पिता ने भी कुमारी की अवस्था विवाह योग्य जान कर ब्राह्मण को भेज कर पुष्पावती के सेठ धनदत्त से उसका सम्बन्ध निश्चित कर दिया। सदयवच्छ यह जानकर वेश्या के कथनानुसार स्त्रीवेष में कुमारी से उसके घर जाकर मिला तब उसे देवी मन्दिर में मिलने का कुमारी ने संकेत किया। निश्चित समय पर पुष्पावती से धनदत्त आया और उसके साथ सावलिंगा का विवाह हो गया। सदय-वच्छ के साथ अपनी पुरानी प्रीति एवं वचन निबाहने के लिये देवी मन्दिर में अपनी पूर्व मनौती पूर्ण करने को पति से आज्ञा लेकर वहां पहुंची। सदयवच्छ ने उस दिन दूना नशा कर लिया और देवी के मन्दिर में जाके सोगया। नशे की अधिकता से उसको इतनी प्रगाढ निद्रा आगई कि सावलिंगा ने उसे जगाने के लाख प्रयत्न किये पर सब निष्फल गये। तब निराश होकर वह अपने घर लौटते समय अपने आने के सूचक-चिन्ह एवं फिर मिलने का संकेतसूचक दूहा कुमार के हाथ पर लिखदिया।

निद्राभंग होनेपर कुमार ने सावलिंगा के न आने का बड़ा अफसोस किया। दतौन के समय हाथ की ओर देखने पर कुमार ने हाथ पर उसका लिखा हुआ दूहा पढा और अपनी गलती महसूस कर योगी होकर दोहे की सूचनानुसार पोहपावती नगर पहुँचा (रास्ते में हाथ का लेख नष्ट न हो जाय अतः बावड़ी में पशु की भांति मुंह से पानी पिया इस प्रसंग में पनिहारियों से बातचीत करते हुए कुंभारिन से पता लगा कर वह धनदत्त सेठ के घर पहुंचा और सावलिंगा से चार आंख होने पर दोनों अधीर हो उठे। उस समय सावलिंगा ने अपने पति को कहकर नया महल या मंदिर बनाने का काम शुरू कर रखा था। सदयवच्छ उसी के निर्माण कार्य मे मजदूरी करने लगा। एक दिन जोगी का वेश धारण कर भिक्षा लेने सावलिंगा के घर गया जब उसने अन्य किसी के हाथ से भिक्षा न ली। तब सावलिंगा देने आई और पुनः चार आंखें होने पर स्तंभित से हो गये। राजगवाक्ष में बैठी हुई राजकन्या ने यह स्वरूप देख उपालंभ सूचक दोहे कहे। इन दोहों को सुनकर कुमार नाराज होकर चलागया। राजकन्या ने सावलिंगा से मिलकर दोनों का प्रेम सम्बन्ध ज्ञात किया। इधर सदयवच्छ ने सैन्य संग्रह कर पुहुपावती के राजा भोज को राजकन्या देने का कहलाया और उसके न मानने पर युद्ध कर उसे हरा दिया। तब भोज ने अपनी कन्या का विवाह उससे कर दिया। कर-मोचन के समय कुमार ने अन्य वस्तुएं न लेकर धनदत्त सेठ को बांधकर मंगवाया और उससे सावलिंगा देने का स्वीकार कराके छोड़ दिया। सावलिंगा और सदयवच्छ का युगल जोड़ा मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ कुछ दिन वहां रहने के पश्चात सपरिवार अपनी नगरी लौट राज्यपालन करताहुआ विलास करता रहा। सावलिंगा आदि रानियों के साथ विषय सुख भोगते हुए उसके ४ पुत्र हुए। यहीं कथा की समाप्ति होती है।

कथा के विविध रूपान्तर—

उपर्युक्त कथा में प्रेम और विरह की प्रधानता है अर्थात शृंगाररस प्रधान है। सावलिंगा ने भी अपनी प्रीति व वचन निभाया। इसके परवर्ती रूपांतरों में सदयवच्छ की नगरी का नाम किसी में मुंगीपुर किसी में आनन्दपुर और किसी में पहुपावती मिलता है उसके पिता का नाम सालिवाहन व महीपाल। माता का नाम कहीं चंपकमाला कहीं सोभाग्य सुन्दरी एवं गुरुका नाम सगुण महात्मा लिखा है। सावलिंगा के पिता का नाम पदमसेन कहीं

पद्मसेठ और माता का नाम लीलावती लिखा है। विद्याध्ययन के लिये गुरु के पास कहीं सावलिंगा पहले गई और कहीं पीछे, ससुराल का स्थान पाशनगर, श्वसुर का नाम हीरा, पति का नाम रतनपाल एवं वहां के राजा का नाम विजयपाल लिखा है। पुहपावती में सदयवच्छ के पहुंचने पर कई कथानको में घर में आग लगाकर सावलिंगा का बगीचे में उससे जाके मिलना, कहीं वहां भी सदयवत्स का नहीं पहुँचसकना लिखा है। वहां के राजा का नाम कहीं भिन्न ही लिखा है और उसकी कन्या के विवाह का कारण कन्या का सावलिंगा से अनुराग हो जाना बतलाया है। कहीं स्वयंवर विधि से उसके साथ विवाह होने का उल्लेख है। कई रूपांतरों में सदयवच्छ का अपने नगर लौटने का कारण पिता का अन्वेषण कर बुलावा भेजना लिखा है। और भी कई घटनाओं में अंतर व कमीवेशी पाई जाती है। अर्थात अनेक व्यक्तियों की सूझबूझ से इस कथा में बहुत कुछ समय समय पर जोडा एवं रूपांतरित किया गया है।

कई कथानकों के प्रारंभिक भाग में उसके पूर्वभव का प्रसंग देकर प्रीति का प्राचीन सम्बन्ध होना व्यक्त किया है। एक रूपान्तर में अन्य अनेक कथानकों की भाँति शिव पार्वती का प्रसंग भी जोड़ दिया गया है।

अब गुजरात और राजस्थानी संस्करण में मुख्यरूपसे जो अन्तर है उस पर प्रकाश डाला जाता है।

१. गुजराती संस्करण वीर एवं अद्‌भुतरस प्रधान है राजस्थानी श्रृंगार प्रधान है।

२. गुजराती संस्करण में कई घटनाऐं हैं। तब राजस्थानी कथा में घटनाओं का प्राधान्य व अधिकता नहीं है पर प्रेम संबन्धी कथन ज्यादा है।

३. गुजराती संस्करणानुसार सावलिंगा सदयवत्स की विवाहिता पत्नी है तब राजस्थानी संस्करणानुसार वह रत्नपालकी विवाहिता पत्नी और सदयवत्स की प्रेमिका है।

४. गुजराती संस्करणानुसार सदयवत्स उज्जैनी के राजा प्रभुवत्स का पुत्र है तब राजस्थानी के अनुसार विजयपुर, आणन्दपुर, मुंगीपुर या पुहपावती के राजा महिपाल या सालिवाहन का पुत्र है।

५. गुजरात एवं राजस्थान में प्रचलित आधुनिक कथानक मिलता जुलता है

अर्थात्—गुजरात में भी प्राचीन कथानक को अब भुला दियागया प्रतीत होता है। इनमें पूर्वभवों के प्रेम सम्बन्ध की कथा ७।८ भवों तक बढ़ चुकी है।

परिशिष्ट

(हमारे संग्रह के कतिपय राजस्थानी रूपान्तरों के आदिअन्त का परिचय)

१. सदैवछ सावलिंगा री वार्ता लिख्यते—

आदि—**पोहपावती** नगरी छै, सालिवाहन राजा छै, सो राज्य करे छै, खाग त्याग निकलंक छै, गऊ ब्राह्मण प्रतिपाल छै, प्रजा ने सुखदाइक छै, तिण राजा रै चम्पकसेण नामै पटराणी छै, महासतवन्त छै, सील गुणे रूप करी विराजमान छै, तिणरे **सदैवछ** नामे कुंवर छै ··· तिण राजा रे **पदमसैण** नामे मुहतो छै सगला कामदारां सिरे छै, तेहनै १ पुत्रिका छै सालिंगा नाम छै।

* * * * * *

अन्त—पछै सदैवछ के केतरेक दिने बेटा ७ हुवा, संसार ना सुख भोगवी, बड़ा बेटा नै राज देई आप तापस व्रत आदरी मूंन साभी वैकुंठ गयो।

दूहो—सदैवछ सावलिंगा जिसौ, जे निरवाहे नेह।
पूरी प्रीती तेहनी, पामै सुख अछेह॥ २२१॥

इति श्री सदैवछ सालिंगा री वात दूहा गाहा समेत ग्रन्थ ७०० सै संपूर्णम्।

प्रति, गुटकाकार। पत्र ६॥ प्रति पृष्ट पंक्ति २२ से २६ प्रति पंक्ति अक्षर ४१ कुछ अक्षर जल से भीग के नष्ट हुए जैसे प्रतीत होते हैं।

२ A. अथ सदैवछ सावलिंग्या री बात दूहा लिख्यते—

अथ **मूंगीपुर** पाटण नगर तठै राजा श्री सालिवाहन राज करै तेहनो पुत्र सदैवछ कुंवर तिणरी माता **सौभाग्य सुंदरी,** राणी महाचतुर अदूभुत रूप राजा रे पटराणी, तिणरो पुत्र सदैवछ ·· हिव राजा रे परधान पद्मसेठ तिणरे घरे अस्त्री **लीलावती** छै तिणरी कुंवरी पद्मिनी रूप सावलिंग्या नामै।

* * * * * *

अंत—शावलिंगा मन भावती सुं प्रीत घणी, पुत्र च्यार हुवा, लीला विलास करै छै, वाग माहे भूखा उठीया तरै सुदैवछ कह्यो. पाछलो चन्द्रायणो—

जे सर नीर ज होय तो पंथी पाइयै, अंब फलया बहु भांति तो डाल नवाइयै।
वाडी वन फूल होय तो तोडि चखाईयइ, परिहाँ राख्यौ कहा ज होय मरै भी जाइयइ।९५।

नेण चमक्कां वेण रस, सुगुणां पैस सुहाय।
सनाराणां जिम आदमी, चंधो चंव घसाय ॥ ९६ ॥

जागै नहीं तरे कहयौ। दूहो—

वाचा पाले पोढीयो, खारा अमल करेय।
पोह फाटंती जागसी, मूवां सीख भरेय ॥ ९७ ॥

इति श्री सुदेवछ सावलिंगा-री वात दूहाबन्ध संपूर्ण।

प्रति—पत्र १४ पं. १५ अ. ३८.

२ B. इसीका संक्षिप्त रूप, दोहा ११८, पत्र ६ पं. ११ अ. ३४

३. अथ शदेवछ सावलिंगा री वात लिख्यते दूहा—

आदि—न्याय सुतारा नरवहण सुगुण करे सर जांम।
सावलिंगा सूदो सरस, तेण भवंतर नाम।

श्लोक—लिखिता चित्रगुप्तेन, ललाटेक्षर मालिका।
न सा मार्जयितुं शक्ता, पंडितै स्त्रिदशैरपि ॥ २ ॥
लिखित लेख सूदो लिखै, सावलिंगा सुख सात।
साह तणे वर (वो) अवर, वणी असंभव वात ॥ ३ ॥

अर्थ वात—पूर्वलै भव सुगुण महातमा रो जीव सुजाणसिंघ पांचोली एहवै नामैं हुंतो, सदयवछ रो जीव मनोहर सूत्रवी हूतो। सावलिंगा रो जीव रूपमती एहवै नामैं स्त्री हुंती।

* * * * * *

अंत—ज्युं सावलिंग रु सदैवछ रो सफल मनोरथ हुवो, भली परै राज्य पाल्यो, भलीभांति सुं लीलविलास भोग्या, जिणतरां बीना माणसां नें पिण सरव थोक भला भला लाभै मनोरथ। सदयवछ सावलिंगानी परे वाचणहार सुणनहार रा मनोरथ फलै सही सही।

इति श्री सदयवछ कुंवर सावलिंगा री वार्त्ता संपूर्ण ।

प्रति १—गुटकाकार पत्र १३ से २४, पं. २१ अ. २२ गुटका नं० ६

२— „ „ २९ से कुछ अपूर्ण (बीच के भी कई पत्र कम) गुटका नं. ७१

३— „ „ २ से १७ „ गुटका नं. ७२

४. इसी का विस्तृत रूप जिसमें केशव रचित चौपाई का अंश भी यथास्थान सम्मिलित कर लिया है उसका रचनाकाल वाला पद्य भी इसमें पाया जाता है ।

प्रति- गुटककार पत्र ४२, पं. २४ अ. १७ (सं. १९१६ लि.) नं. २१

४. आदि अन्त अपूर्ण गुटका (नं० ६४ मध्य पत्र १५ से १९ अंत का भाग थोड़ा सा अपूर्ण ।

मध्य—ताहरां इतरौ सुण सदेवछ हालीयो, वेस्या रे ठिकाणौ गयौ ताहरां वेस्या कह्यो, कुंवरजी आपरो वागो पैहरो, स्त्री रो वेस उतारौ ताहरा वागो पैहरीयो। सावलिंग्या परणीजै छै ।

५. अथ श्री सदैवच्छ सावलिंगा री वार्त्ता लिख्यते ॥

"सांणेरी नगरां सिरै, गढ़ां सिरै गिरनार ॥ १ ॥
कुंअरां सिरे सदैवछ कुंअर, वडी भुजां वणवार ॥
पाटंवर जरकस पैहर, सवही आयुध साहि ।
सांणेरी री सेरियां, ऊभो सदैवछ आय ॥ २ ॥
तिण सेरी ऊभा अछै, धर माया अवधत्त ।
चेलो गुरु आगे चवै, विरदणि हंदी वत्त ॥ ३ ॥
आणंदपुर णाम नयरं, सालिवाहण मंतिय पोमं ।
सदैवछ राय नंदण, सावलिंगा मंत ए धूआ ॥ ४ ॥

× × × ×

अन्त—सदवछ सावलिंगा कहै, धन ए अवसर आज ।
प्रीतम मिलूया तन ठर्या, सीधा सगला कांज ॥ २१ ॥

सावलिंगा मन भावती, प्रीति घणी छै, संतान पुत्र हूआ लीला विलास करै छै, सुखे रहै छै ।

इति श्री सदवच्छ सावलिंगा री वात संपूर्ण । ग्रन्थाग्रन्थ दोधक वार्ता मिलने २९१ जाता रिति ।

संवत् १७७२ वर्षे मिति मिगसर वदि ३ तिथौ। बुधवासरे श्री सिणधरी मध्ये लिखितं खेमचन्द्रगणिभिः।

प्रति-गुटकाकार पत्र १६ पं० १५ अ० २० से २८ गुटका नं० २०

वि० एक पंक्ति काली १ पंक्ति लालस्याही से सुन्दराक्षरों में लिखित।

कई २ पंक्तियों के अक्षर चिपककर नष्ट होगए हैं।

६. सदैवछ सावलिंगा री बात लिखी गई छै।

आणंदपुरं नयरं, सालिवाहण मंतीय पद्म।
सदवछराय नंदन, सावलिंगा मंती धूयाउ ॥ १ ॥

वात—आणंदपुर नगर, तठै राजा शालिवाहन राज करै छै तिणरै सदैवछ बेटो छै, तिण राजा रै परधान पदमसी छै तिणरी पुत्री सावलिंगा सदैवछ सुं प्रीति हुई तिका बात कहइ छइ।

× × × ×

अंत—दिन ऊगइ सदेवछ सावलिंगा घरे पधार्या, सुखइ राज पालै छै।

नयण चमको वयण रस, सुगणा एह सुहाइ।
अण जाणां जिम आदमी, चम्मो चम्म घसाइ ॥ २ ॥

इति सदैवछ सावलिंगा री वात संपूर्ण ग्रंथाग्रन्थ २००

प्रति १ गुटकाकार पत्र १४॥ पं० १४ अ० १७ (सं० १७३४ लि० नं० ८)

,, २ ,, पत्र ४ अपूर्ण नं० ७६

,, ३ पत्राकार पत्र ३ पं० २० अ० ५४ संक्षिप्त १०० श्लोक दूहा ८१

,, ४ इसी का विस्तृत रूप पत्र १७ अपूर्ण—मोतीचन्दजी संग्रह में।

७. उदयपुर सरस्वती भंडार की ५ प्रतियों में से ३ भिन्न पाठवाली प्रतियों का विवरण श्री मोतीलाल मेनारिया संपादित "राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भा० १ पृष्ठ १४६।४७ में दियागया है।

८. बीकानेर की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में दोहा व वार्त्ता की ७ प्रतिएं हैं

जिनमें दो का विवरण एल. पी. टेसीटोरी संपादित विवरणात्मक सूचीपत्र भा० १ पृ० ७६ एवं भा० २ पृ० ७७ (उपर्युक्त नं० २ सदृश) में प्रकाशित है।

९. सावलिंगा सदवछ री वात लिख्यते इणरा पाछला जनमरी वात लिख्यते।

"एक दिव रो समाजोग छै तरां एकण आंबा रा दरखत नीचै श्रीसिव पारबती वीराजै छै, नै रात आधी रो समाजोग छै। तरै श्रीसदाशिवजी बोल्या। पारबती ! सांभलो हमार इसी पुल वहै छै। सु आ कने सफरा (नदी) वहै छै तिण में कोई जिनावर कूद पड़ै तो मिनख महासुन्दर रूपवन्त होयजाय। तरै पारबती बोली महाराज दुरस छै, आप फुरमावौ तिण में कसर नहीं। इणरी वात कहताउण आंबा ऊपर एक बांदरा बांदरी बैठा छै तिकां सुणियो। सुणने विचार कियो इण नदी में कुदीजै तो मिनख होयजाइजै अबै चौरासी सुं छुटीजै। तरै बांदरै बांदरी नूं कह्यो तुं कूद जा रे, बांदरी कूदी नै बांदरै डूबतां देखी आप अलगो जायनै बैठो नै बांदरी तो लुगाई रूपवन्त होयने वारै आंबा नीचै आय बैठी।

अन्त—लेखत लेख सुही लिख्यो, सावलिंगा सू साथ।
ब्याह तणो वैदो रहयो, एवडी अचुंभै बात॥ १॥

इति श्री सुदेवछ री सावलिंगा वारता संपूर्ण। सं० १८७५ लि० पत्रा २२ पं० १४ अ० ३५

[मोतीचन्दजी के संग्रह में]

नोट—श्रीहर्षवर्धनगणि कृत 'सदयवत्स चरित्रम्' (संस्कृत, द्वि०आवृत्ति सन १९२४) श्रीजैन भास्करोदय छापाखाना जामनगर द्वारा मुद्रित हुई है। बड़ा उपाश्रय, बीकानेर के भंडार से इस लेख को प्रेस में देने के पश्चात् प्राप्त हुई है। पुस्तक १९२ पृष्ठों की है। प्रकाशक, इसकी मूल प्रति के सर्वथा शुद्ध होने का दावा तो नहीं करता, किन्तु कई नई बातें इससे जानी गई हैं यदि पहले मिल जाती तो प्रस्तुत लेख के कई संदेह ठीक होजाते। फिर कभी प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।—लेखक।

डॉ० एल. पी. टैसीटोरी

[लेखक—हजारीमल बाँठिया]

भारतवर्ष के विदेशी भाषा-वैज्ञानिकों में डा० एल. पी. टैसीटोरी का प्रमुख स्थान है। राजस्थान में आपका जन्म नहीं हुआ था, फिर भी आप राजस्थान के उज्वल रत्न कहे जा सकते हैं। कर्नल टॉड के बाद आप ही दूसरे व्यक्ति हैं जिन्होंने राजस्थान को अपनी मातृभूमि के समान अपनाया—वहीं पर अपना प्रतिभाशाली कार्यक्षेत्र का श्रीगणेश किया और अन्त में उसकी ही पवित्र रज में विलीन होगये।

आप इटली देश के निवासी और भारतीय विशेष कर जैन और राजस्थान साहित्य एवं संस्कृति के अनन्य प्रेमी थे। आपका जन्म ई. स. १८८८ (सं० १९४५) में इटली के प्रसिद्ध नगर उदीने (Udine) में हुआ। खेद है कि आपके जीवनचरित्र सम्बन्धी साधन हमें उपलब्ध नहीं हैं। यह हमारे लिये एक दुःख की बात है। डॉ० टैसीटोरी जैसे महान् आत्मा का नाम राजस्थान के साहित्य के अमर इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। क्योंकि भारतीय वाङमय में आज डिंगल साहित्य को जो थोड़ा बहुत स्थान प्राप्त है उसका अधिकतर श्रेय डॉ० टैसीटोरी ही को है। इस लेख में आपके जीवन सम्बन्धी जो झांकी दिखाई जारही है वह उनके स्वयं के लिखे २५ पत्रों के आधार पर (ता० ११ अप्रेल १९१३ से १६ दिसम्बर १९१६ तक के) जो उन्होंने कुछ तो उदीने (इटली) से और कुछ भारत से विभिन्न स्थानों में रहते हुवे शास्त्रविशारद जैनाचार्य्य स्व० श्री विजयधर्मसूरिजी के नाम से लिखे थे।

आपने २१ वर्ष की आयु तक इटली की फ्लॉरेन्स यूनिवर्सिटी में अध्ययन किया। आप अंग्रेजी में एम. ए. थे। इटली में रहते हुए ही फ्लॉरेन्स यूनिवर्सिटी ने आपको पी. एच. डी. की डिग्री आपके तुलसीदास कृत रामायण पर लिखे हुये निबन्ध से प्रसन्न होकर प्रदान की थी।

आप साहित्यिक होने के साथ २ एक अच्छे सैनिक भी थे। ई. स. १९११ में २३ वर्ष की आयु में आप मिलान की फौज में सैनिक रूप से भर्ती हुये और वहां पर कुछ महीनों तक कार्य किया।

आप एक ज़बरदस्त भाषा-वैज्ञानिक थे। आपको भारतवर्ष की भाषाओं से बड़ा प्रेम था। विशेषतया राजस्थानी और गुजराती से। अपने देश में रहतेहुये ही आपने अंग्रेज़ी, लेटिन, ग्रीक, संस्कृत और प्राकृत इन भाषाओं के सिवाय पुरानी गुजराती, नयी गुजराती, अपभ्रंश, राजस्थानी (मारवाड़ी) हिन्दी, डिंगल, व्रज और उर्दू आदि कई भाषाओं का अभ्यास करलिया था। आपने इन भाषाओं का अभ्यास सिर्फ ग्रन्थ पढ़ने मात्र ही के लिये नहीं किया वरन् इन भाषाओं में ठोस और गम्भीर कार्य करने के लिये किया था।

आप अपनी भाषा प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ता० ६-६-१२ के पत्र में इस प्रकार लिखते हैं—"प्राकृत भाषा से मुझे बहुत शौक़ है। अपभ्रंश और वर्तमान में प्रचलित भाषाओं का परस्पर क्या सम्बन्ध है—इसका मैं अभ्यास कर रहा हूं। यहां की फ्लॉरेन्स की लाइब्रेरी में से पुरानी गुजराती की कुछ प्रतियां मिली हैं। इन पर से अपभ्रंश द्वारा पुरानी गुजराती की मूल उत्पत्ति खोज निकालने का प्रयास कर रहा हूं।" कितनी बड़ी जिज्ञासा ? यह आपकी भारतीय-भाषाओं के प्रति पूर्ण अभिरुचि का ही समर्थक है।

आपने भारतीय भाषाओं का अभ्यास बिना किसी शिक्षक की सहायता से किया था। इसके सम्बन्ध में आपने विजयधर्मसूरिजी से एक बार कहा था—"मेरे देश में मुझे किसी भी शिक्षक की सहायता तो मिली ही न थी, परन्तु अेक मात्र पुस्तकों की सहायता से ही मैं भारतीय भाषाओं का अभ्यास कर सका हूं।" शिक्षक के साधन बिना सिर्फ पुस्तकों की सहायता से ही भारतीय भाषाओं का इतना गहन अध्ययन करना—यह आपके भारतीय भाषाओं के प्रति प्रेम, उत्साह तथा विलक्षण बुद्धि का परिचायक है। मुनि विद्याविजयजी के शब्दों में "मात्र ३१ वर्ष की आयु में इसने अपने देश में रहकर अभ्यस्त की हुई भाषाएं, इसका साहित्य प्रेम तथा प्रवृत्ति देखते हुये यह कहना न होगा कि भारतवर्षीय भाषाओं के अभ्यासी पाश्चात्य विद्वानों में उसका नम्बर सर्व प्रथम है।" ये शब्द आज से कई वर्ष पूर्व जबकि डॉ० टैसीटोरी भारत ही में थे, 'बीसवीं सदी' के सम्पादक महोदय की सूचना से गुर्जर प्रजा के सन्मुख कहे थे।

डॉ० टैसीटोरी जैनाचार्य्य श्री विजयधर्मसूरिजी के पक्के भक्त व शिष्य थे। आपकी गुरु व जैन धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी। आप एक प्रकार से जैन-धर्म के अनुयायी थे। गुरुदेव की आज्ञा से इन्होंने राजस्थान में आकर मांसभक्षण छोड़ दिया था—बिलकुल शाकाहारी रह कर सादगी से जीवन बिताने लगे थे।

आप जैन साहित्य के बहुत प्रेमी थे। इस विषय में अगाध प्रेम व भावुकतावश सर्वप्रथम ता० ११ अप्रेल १९१३ को उदीने (इटली) से आचार्य विजयधर्मसूरिजी के नाम से प्रॉफेसर जैकोबी के कहने से पत्र लिखा। उसमें आपने धर्मदास की "उपदेशमाला" के संपादन करने व उसका इटली भाषा में अनुवाद करने की इच्छा प्रकट की तथा 'श्रेणिक की कथा' और जयवल्लभ के 'वज्जालग' के संपादन करने की भी अभिलाषा प्रकट की। पू. आचार्य महाराज से सहायता प्राप्त करने के लिये आपने पत्र में लिखा है कि "मुझे पूरा यक़ीन है कि आप मेरा भारत के प्रति प्रेम-विशेष का जैन साहित्य से,—को देखकर अवश्य सहायता करेंगे। कष्ट के लिये क्षमा करना।" और यह भी लिखा कि "मैं इस वक्त राजस्थानी भाषा का व्याकरण तैयार कर रहा हूं।"

इस पत्र के प्रत्युत्तर में आचार्य महाराज ने अपने पत्र ता० १२ मई १९१३ द्वारा डॉ० टैसीटोरी की अभिलाषाओं को पूर्ण किया और इन्हें "उपदेशमाला" व "श्रेणिक की कथा" की हस्तलिखित प्रतियें भेजी।

प्रतियों के लिये व सहायता के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हुए तारीख ६-६-१९१३ के पत्र में डॉ० टैसीटोरी लिखते हैं—"मेरी भारत आने की अतीव तीव्र उत्कंठा है। किन्तु भारत में कोई जीवन-निर्वाह का साधन न होने के कारण नहीं आसकता। इसके लिये मैं "भारतीय-दफ़्तर" को प्रार्थना-पत्र भेजूंगा। अगर सफल होगया तो शीघ्र ही आपके चरणारविंदों की पूजा करने के लिये आपके पास अवश्य आऊंगा। मैं हूं आपका आज्ञाकारी सेवक—एल. पी. टैसीटोरी।"

उपर्युक्त पत्र के उत्तर के साथ आचार्य महाराज ने ता० ६-७-१९१३ को स्वयं-लिखित पुस्तकें "अहिंसा दिग्दर्शन", "जैन दीक्षा", "जैन तत्व" आदि पुस्तकें भेजीं।

इस पत्र का प्रत्युत्तर डॉ० टैसीटोरी ने ता० २१ जुलाई १९१३ को दिया जिसका हिन्दी अनुवाद इसप्रकार है—"आपने बहुत सी वस्तुएँ जो मुझे भेंट की हैं उन सब में आपका फोटू बहुत पसंद आया है जो आपकी पुस्तक "अहिंसा दिग्दर्शन" में लगा हुआ है। निस्सन्देह मैं उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। आपकी शांत मूर्त्ति मेरे नेत्रों में स्थापित होगई है। जब कभी मैं आपके पत्र और पुस्तकें पढ़ता हूं या उनके बारे में सोचता हूं तो झट आपकी शांत मूर्त्ति मेरे नेत्रों के सन्मुख आ उपस्थित होती है। मैं वास्तव में सोचता हूं कि आपके जैसा शांत एवं उदार पुरुष इस पृथ्वी पर कोई नहीं मिलेगा। मैं चाहता हूं कि मैं अपने आपको आपके अर्पण करदूं।

"आपने कृपा कर भारत में मेरी नौकरी कहां होनी-चाहिये इसके सम्बन्ध में पूछा सो ठीक। मैं अपनी नौकरी राजपूताना में पसंद करूंगा क्योंकि मेरी मारवाड़ी और ढूंढाड़ी भाषाओं में काम करने की तीव्र उत्कंठा है। कहा जाता है कि इन भाषाओं का साहित्य बहुत विस्तृत क्षेत्रवाला और सभी विषयों का है। मेरा पक्का इरादा है कि मैं भी इन भाषाओं के लिये कुछ कर सकने में समर्थ होऊं तथा पुरानी ढूंढाड़ी भाषा का व्याकरण लिख सकूं जैसाकि मैंने पुरानी गुजराती के लिये किया है। राजस्थान और गुजरात की भाषायें बहुत ही उपयोगी एवं सुन्दर हैं। मैं भारत आने के लिये लंदन के भारतीय दफ़्तर को भारत में सम्भवतः राजपूताना के आस पास किसी कालेज या स्कूल में लेटिन, ग्रीक और इटली भाषा के अध्यापक के लिये प्रार्थनापत्र भेजंगा। अगर मैं इसे प्राप्त करने में सफल हो गया तो शीघ्र ही भारत के लिये रवाना होजाऊँगा।

"अगर ऐसा न हुआ तो मैं जयपुर के महाराज या अन्य किसी भारतीय नरेश को कोई मेरे स्थान के लिये लिखूंगा जिसको मेरी तुच्छ बुद्धि संपादन कर सकती है। मैं येनकेन प्रकारेण भारत में भारतीय भाषाओं का अध्ययन करने के लिये आना चाहता हूं। मुझे अपनी मातृभाषा से भी अधिक प्यार भारतीय भाषाओं से है। बचपन से ही मुझे भारत के सम्पर्क में आने की अभिलाषा रही है और भारत को ही मैं अपने जीवन का प्रधान कार्यक्षेत्र समझता हूं।"

आप आजन्म ब्रह्मचारी रहे—इसके सम्बन्ध में आप इसी पत्र में लिखते हैं—

"मैं अभी तक क्वारा हूं। इस वक्त मैं २५ वर्ष का हूं। मैं भारतीय लड़की के सिवाय किसी दूसरी से शादी नहीं करूंगा।"

डॉ० टैसीटोरी ने भारतीय भाषाओं (हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती) पर इतना आधिपत्य कर लिया था कि वे उदीने से प्रायः पत्र हिन्दी में ही लिखा करते थे। आप हिन्दी में पत्र लिखने व बोलने के बड़े इच्छुक थे। एक समय आपने आचार्यश्री को सूचना की थी कि "आप मुझे जो पत्र लिखा करें वे गुजराती अथवा देवनागरी लिपि ही में लिखा करें।"

डॉ० द्वारा लिखित हिन्दी पत्र का नमूना नीचे दिया जाता है—

गुरु महाराज !

जब आपका गुजराती में लिखा हुआ पत्र मेरे हाथ आया, तब जो आनन्द मुझको हुआ वह किस तरह कहा जाय ? मैं तो यही कहूँगा कि मैं आपकी सहृदयता और सहायता के बदले ऐसा कृतज्ञ हो रहा हूँ कि कितना ही आग्रह करने पर भी मुझसे कोई यथोचित प्रतिकार कभी न हो सकेगा, ऐसा विचार मुझ को करना पड़ा। मैं आपका बड़ा शुक्रमंद हूँ। × × × ×

इतना ही मतलब हिन्दी में लिखकर आगे जो शेष है, सो अंग्रेजी में लिखता हूँ क्योंकि अभ्यास न होने से मुझको हिन्दी या गुजराती में लिखना कठिन है। लेकिन मेरी यही आशा है कि जब मैं हिन्दुस्तान में हूंगा, तब इन दोनों ज़बानों में जल्द प्रवीण हूंगा।

मांसभक्षण के संबन्ध में पूछते हुये आचार्यश्री को आपने अपने १६ अक्टूबर १९१३ के पत्र में लिखा कि हमारा ईसाई धर्म हमें यह सिखलाता है कि ईश्वर ने जो जीवजन्तु पैदा किये हैं वे मनुष्य की उपयोगिता व उसके लिये बनाये हैं, अतः उन्हे खाना कोई पाप नहीं है। ४ वर्ष पूर्व मेरी फ्लॉरेन्स में दो ब्राह्मणों से इसके बारे में चर्चा हुई थी। जिसपर मैंने १ वर्ष तक मांसभक्षण करना छोड़ दिया था। इस दरम्यान में मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगड़ा तब वैद्यों ने मुझे जबरदस्ती मांस खाने के

लिये प्रेरित किया। स्वास्थ्य सुधार के वास्ते मैंने ठीक समझा इसलिये फिर शुरू कर दिया है। मांस खाना मेरी इच्छा के विरुद्ध है पर इस वक्त लाचार हूँ। जब मैं भारत में आजाऊंगा तो आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अवश्य छोड़ दूंगा। मैं मांस के नाम पर सिर्फ अंडे ही खाता हूं, वह भी हफ्ते में २ व ३ बार ही।

आचार्यश्री ने डॉ० को अपनी संचालित "यशोविजय जैन पाठशाला, पालीताना" के अध्यापक के लिए आने को निमंत्रित भी किया था। पर कुछ शर्तों के कारण उसके लिये न आसके।

आखिर सर ज्यॉर्ज ग्रियर्सन की सिफारिश से भारतीय दफ्तर लन्दन ने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता के लिये आपको भारत बुला लिया और आपको बार्डिक एण्ड हिस्टॉरिकल सर्वे ऑफ राजपूताना के सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर नियुक्त कर दिया।

आप इटली (नेपल्स) से ता० २४ मार्च १९१४ को भारत के लिये रवाना हुये और ८ अप्रेल १९१४ के प्रातःकाल १० बजे आप बम्बई के तट पर जहाज से उतरे। और आपके बम्बई के मित्र मि० S. R. Harganhalli ने आपका अपूर्व स्वागत किया और आपको बम्बई में अपने मित्र डॉ० नादगर के घर पर ठहराया। आप अपने १२ अप्रेल के कलकत्ते से दिये गये पत्र में लिखते हैं "मैं इटली से भारत तक की १५ दिनों की यात्रा में बहुत थक गया। मैं जिस दिन बम्बई उतरा उससे पहली रात को मुझे नींद भी न आई। बम्बई आने पर सारा दिन आराम किया शाम को कई मित्रों से मुलाकात की।"

दूसरे दिन ता० ९ को सुबह बम्बई के बाजार से कुछ जरूरी चीजें खरीदकर दुपहर की १ बजे की गाड़ी से कलकत्ते के लिये रवाना होकर ता० ११ अप्रेल को प्रातःकाल ७ बजे कलकत्ते पहुँचे और आप कलकत्ते की कॉन्टीनेन्टल होटल में ठहरे। भारत में पैर रखते ही आपको आचार्यश्री के दर्शनों की तीव्र अभिलाषा हुई पर सोसायटी ने आपको आज्ञा नहीं दी।

आपने कलकत्ते में आकर सोसायटी के सेक्रेटरी को राजपूताने की ओर शोध कार्य के लिए जाने की प्रार्थना की। पर गर्मी के दिन होने के कारण उन्होंने आज्ञा

नहीं दी। आखिर कई महीनों के बाद ता० २२ जुलाई १९१४ की शाम को अपने प्रियतम राजस्थान की ओर प्रस्थान किया—जिसके वे स्वप्न वर्षों से देख रहे थे आखिर सफल हुआ। रास्ते में २ दिन जयपुर में सर इलीयट कॉडविन पॉलीटिकल एजन्ट के पास ठहरे और राजपूताना में भ्रमण का आज्ञापत्र लिया और ता० २६ अप्रेल को जोधपुर में महाराजा के सोजाती गेट गेस्ट हाउस में ठहरे।

राजस्थान में आकर आपने आचार्यश्री की आज्ञा से मांसभक्षण करना बिलकुल छोड़दिया। पं० विश्वेश्वरनाथजीने, जो आचार्यश्री के भक्तों में से एक हैं आपके लिये भारतीय भोजन का प्रबन्ध करा दिया। अब आपने राजस्थान में भ्रमण करने का प्रोग्राम बनाया।

आपने जोधपुर से ता० २८ जुलाई १९१४ को पत्र लिखा उसमें लिखा कि मैं १०-१५ दिन जोधपुर से एक इंच भी नहीं हटूंगा—इसके बाद आपके दर्शनों के वास्ते एरिनपुरा आऊँगा। मुझे जयपुर से भी अधिक सुन्दर नगर जोधपुर पसंद आया है। मैं चाहता हूँ कि मैं अपनी सारी जिन्दगी यहीं जोधपुर में बिताढूँ।"

जोधपुर १५ दिन करीब ठहर कर आप आचार्यश्री के दर्शनों के वास्ते एरिनपुरा गये। यह आपकी सर्वप्रथम मुलाकात थी। जिन आचार्यश्री के दर्शनों के वास्ते आपकी वर्षों से उत्कंठा थी, सफल हुई। आप आचार्यश्री के पास ५-७ दिन तक ठहरे। आपके हृदय पर आचार्यश्री के दर्शनों की बहुत गहरी छाप पड़ी। आप आचार्यश्री के दर्शन व मुलाकात कर ता० १७ अगस्त १९१४ को प्रातःकाल १० बजे वापिस जोधपुर चले आये। ता० १९ अगस्त १९१४ को आपने आचार्य श्री के पास निम्न आशय का पत्र हिन्दी में लिखकर भेजा—उसका कुछ नमूना यह है—

मुनि महाराज!

मैं परसों दस बजे कुशलता पूर्वक जोधपुर पहुँच गया हूँ। आपने और आपके पट्टशिष्य श्री इन्द्रविजयउपाध्यायजी ने तथा श्रावक लोगों ने मेरा जो आतिथ्य व सत्कार किया, उसके लिये मैं आपको और आपके संबंधी सब लोगों को अन्तःकरण से कोटिशः धन्यवाद अर्पण करता हूँ। × ×

× × × ×

आपके दर्शन से मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसे लिखकर प्रगट नहीं कर सकता उसका हृदय ही अनुभव कर सकता है। मेरी यह अभिलाषा है कि फिर बहुत शीघ्र ही आपका दर्शन कर कृतार्थ होऊंगा।

आपका आज्ञाकारी भक्त,
L. P. Tessitory.

जोधपुर में रहकर आपने जगह २ भ्रमण कर सब हस्तलिखित भंडारों को देखा। सब Bardic (जैन व अजैन) ग्रन्थों का अवलोकन कर नोट्स तैयार किये। भंडारों को देखने में आपको बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पर आप अध्यवसायी, परिश्रमी व धुन के पक्के थे। जिस काम को करने बैठते उसे संपूर्ण करके छोड़ते थे। राजपूताने की गर्म जलवायु जो एक यूरोपियन को असह्य है—चिलचिलाती धूप में जब सारे लोग अपने घरों में खस के ट्टों को बांधे पड़े रहते हैं उस वक्त भी आप पैन और कागज लेकर रिसर्च वर्क के लिये निकलते थे। आप १९१४ सितम्बर के शुरू में नागौर में भंडार देखने के लिये गये। पर वहां आपको किन कठिनाइयों का सामना करना पडा वह आप अपने ता० ११-९-१९१४ के पत्र में लिखते हैं—"गये हफ्ते मैं नागौर गया था। जाने का सबब यह था कि नागौर में दिगम्बरों का एक बड़ा भंडार है जिसमें आसपास १० हजार पुस्तकें हैं—ऐसे सुनने में आया था और यह भी सुना था कि वह भंडार सदाई बंद रहता है और उसका अधिकारी भट्टारक जो हैं, सो भंडार खोलने की इन्कार दे रहते हैं इस वास्ते जोधपुर दरबार के हुकुम की चिट्ठी लेकर उधर गया था, परन्तु राज्य के हुकुम होने पर भी उस भट्टारक ने कुछ नहीं दिखलाया अफसोस की बात है कि इतनी पुस्तक कि बेशक प्राचीन और अमूलय है कीड़ों का भोजन होने वाली हैं।"

आपका आज्ञाकारी भक्त,
L. P. Tessitory.

सन् १९१४ के सितम्बर की अंतिम तारीखों में आप जोधपुर से बीकानेर को टूर पर आए। बीकानेर में आपने वृहत् जैन खरतरगच्छीय आदि कई भंडारों का अवलोकन कर बहुत से नये ग्रन्थों की खोज की। अक्टूबर सन् १९१४ के पहले हफ्ते में वापिस जोधपुर चले आये। इन्हीं दिनों आपने राजस्थानी गजलों आदि का अध्ययन किया।

८ जून १९१५ शुक्रवार को प्रातःकाल जोधपुर से रवाना होकर दुपहर २ बजे राणी नामक गांव में गये और आचार्यश्री के दर्शन किए। इन्हीं दिनों रतलाम, बून्दी और कलकत्ता भी गये थे।

इसके उपरान्त आप बीकानेर की ओर चले आए और बीकानेर ही को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्यस्थल बनाया। और जीवन पर्यन्त तक बीकानेर ही में रहे। अंत में इसी धूल ही में अन्तर्ध्यान हो गये।

बीकानेर में रह कर बीकानेर रियासत के प्रमुख गांवों और नगरों में ऊँट की सवारी या पैदल ही घूमघूम कर पुराने शिलालेख, सिक्के, मूर्तियें आदि अनेक प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह किया। आपकी सामग्री संग्रह से ही बीकानेर का म्यूजियम बना है। बीकानेर में पहले म्यूजियम नहीं था, परन्तु आपने इस खटकनेवाले अभाव को अपने अथक परिश्रम द्वारा दूर कर दिया। आपने बीकानेर के अधिकतर गांवों में उष्णकाल में धूल के टीबों पर पैदल या ऊंटों की सवारी पर यात्रा की। आपको पैदल यात्रा करने का अत्यन्त शौक था। मुनि [1] विद्याविजयजी लिखते हैं कि डॉ० टैसीटोरी जैसा विद्वान है वैसा ही मिलनसार तथा शान्त प्रकृति का भी है। पैदल मुसाफिरी करना इसे बहुत प्रिय है। आचार्य विजयधर्मसुरिजी महाराज जब मारवाड़ में विहार करते थे तब टैसीटोरी आचार्यश्री से मिलने के लिए आया था। उस समय सादड़ी से राणकपुर तक इसने मुसाफिरी आचार्यश्री के साथ पैदल चल कर ही की थी। इस यात्रा का उल्लेख इसने अंग्रेजी में लिखे हुए आचार्यश्री के जीवनचरित्र में इन शब्दों द्वारा किया है:—

"श्वेत वस्त्र धारण किए हुए शिष्य समूह के मध्य भाग में आप के साथ में रह कर यात्रा करते अरवली के जंगलों में आपके विहार के समय आपके साथ मैंने यात्रा की है।"

दिसम्बर सन् १९१६ के दिनों में आप देशनोक, जांगलू (बीकानेर का सबसे पुराना गांव) व सुराणों की कुलदेवी के गांव मोरखाणे की ओर गए थे।

---

१ आप श्रीविजयधर्मसूरिजी के शिष्य हैं। आपको भी आचार्यश्री के साथ डा० टैसीटोरी के सम्पर्क में आने का मौका मिला था। आप जैन साहित्य के अपूर्व विद्वान हैं।

६ दिसम्बर १९१६ के दिन आपने जांगलू के एक चारण के घर आतिथ्य स्वीकार किया था। आप राजस्थान की, खास कर बीकानेर जोधपुर के गरीब गांवों में रहने वाली किसान जनता से हिलमिल गये थे। आप जहां भी गांवों में जाते वहां गांव वाले आपका अपूर्व स्वागत छाछ, दूध, दही और राबड़ी से करते थे। आपको इनसे अत्यन्त प्रेम था। आप अपने १० मई १९१४ के पत्र में लिखते हैं–"जितना बन सकेगा मैं भारतीयों के हृदय में मिलजुल जाऊंगा। मैं भारत में इसीलिये आया हूं क्योंकि मुझे भारत के लोगों व उनकी भाषा और साहित्य से प्रेम है। और इसीलिये मैं जितना भी ज्यादा इसके बारे में जान सकूंगा उतनी ही मुझे अधिक खुशी होगी।"

I am not an Englishman to look down upon all that is not English or at least European, I have the highest respect & admiration for the Indian people.

आप गांवों के लोगों से मारवाड़ी में ही बोलते थे और अमीर-गरीब सभी की करुण कहानी सुनते थे।

कितने दुःख की बात है कि बीकानेर के राजकीय इतिहास की सारी सामग्री (सिक्के शिलालेख) डॉ० टैसीटोरी की संग्रह की हुई है। जिसका सारा उपयोग और उसी के आधार से श्रद्धेय ओझाजी ने बीकानेर का इतिहास लिखा है। पर ओझाजी ने इस महान पुरुष का जिसने राजास्थान की अमर सेवा की है उसका बीकानेर के इतिहास में नाम तक नहीं दिया। कितनी उपेक्षा ? इन का नाम तो राजस्थान के इतिहास में मोटे अक्षरों में लिखा होना चाहिये था।

डॉ० टैसीटोरी को जैनधर्म के प्रति अटूट श्रद्धा थी। भारत में आकर और इटली में रहते हुवे भी जैनधर्म के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। डॉ० ने उपदेशमाला, भववैराग्यशतक तथा इंद्रिय पराजय शतक का इटालियन भाषा में भाषान्तर कर छपाया। "श्रेणिक की कथा" जिनमाणिक्यसूरि कृत कुम्भापुत्तकहा, नेमिचंद्रकृत "सट्ठिसयं" सोमसूरिकृत "पज्जंता सहणं" "पुण्याश्रावक कथा कोष", कल्याण मंदिर स्तोत्र, परमज्योति स्तोत्र, गौड़ीपार्श्वस्तोत्र आदि कई जैनधर्म के सूत्रों व जैन विद्वानों के लिखित ग्रन्थों का आलोचनात्मक संपादन भी किया था। एक

तरह से आचार्यश्री के सत्संग से जैन श्रावक हो गये थे। श्रावक के ८ अणुव्रत का पालन करते थे। इतना होते हुए भी उन्हें अपने धर्म इसाईमत से भी काफी प्रेम था। उपदेशमाला व भववैराग्यशतक का भाषान्तर बहुत ही महत्त्व का किया है।

डॉ० टैसीटोरी की रग रग में राजस्थान के प्रति प्रेम व प्यार भरा था। उन्होंने डिंगल-साहित्य की अपूर्व साहित्यिक सेवा की है। यह डॉक्टर टैसीटोरी ही का कार्य था जिसके कारण भारत के सिवाय युरोप के अन्य विद्वानों के हृदय में भी डिंगल साहित्य को स्थान मिला। आपने डिंगल साहित्य के तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संपादन किया जो बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की ओर से प्रकाशित हुए हैं। वे ये हैं:—

(१) छंद राउ जइतसी रो।

(२) वचनिका राठोड़ रतनसिंहजी महेसदासोत खिड़िया जगा री कही।

(३) वेली क्रिसन रुकमणी री।

इन ग्रन्थों के सुसंपादन के साथ ३ महत्वपूर्ण भूमिकाएं भी लिखी हैं जिनसे कवियों के जीवन, भाषा, ऐतिहासिकता आदि पर पूरा प्रकाश पड़ता है। ये ग्रन्थ डिंगल-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ये ग्रन्थ सोसायटी की ओर से बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ राजपूताना के वॉल्यूम्स के अन्तर्गत प्रकाशित हुए है। डिंगल साहित्य में आपकी गहरी पहुँच थी। आपकी संपादन-शैली अद्वितीय, नपी-तुली और प्रमाणिक है। भारत में आकर आपने सर्व प्रथम डिंगलकोष का पूरी तरह से मनन किया था।

आपने राजस्थान में रहकर जो भी खोज-शोध का कार्य किया उस किये कार्य को सन् १९१४, १९१५, १९१६, व १९१७ ई० की चार रिपोर्टों में सोसायटी ने प्रकाशित किया।

इस तरह राजस्थान की अमर सेवा कर आप अपने ऊपरी अधिकारियों के तथा भारतीयों के बहुत प्रिय तथा कृपाभाजन बन गये थे।

आप यथावकाश प्रसंगोपात साहित्यिक सभाओं में भी निरंतर भाग लेते रहते थे। गुजराती साहित्य परिषद् सुरत के अधिवेशन में आपके भेजे हुए लेखों ने

साथरों के बीच जो चर्चा का कारण उपस्थित किया था, वह किसीसे भी अज्ञात नहीं है।

इनके अलावा आपने बीसों राजस्थानी, जैन आदि विषयों पर साहित्यिक लेख भी लिखे थे जो इटली के जर्नलों में व इंडियन एन्टीक्वेरी आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक पत्रिकाओं में छपे थे।

आपके लिखित यथाज्ञात लेखों की सूची हम नीचे देते हैं।

इंडियन एन्टिक्वेरी में:—

रामचरितमानस और रामायण	वॉ. ४१ पृ० २७३
" "	वॉ. ४२ पृ० १
परमज्योतिस्तोत्र	वॉ. ४२ पृ० ४२
टू जैन वर्जन्स आफ थी स्टोरी आफ सोलोमन्स जजमेंट	वॉ. ४२ पृ. १४८
पश्चिमी पुरानी राजस्थानी व्याकरण	वॉ. ४३, ४४

नासकेतरी कहानी—Journal of R. S. O of Rome.

कारकाण्ड की कहानी—G.S.A.G. फ्लॉरेन्स के जर्नल में

भववैराग्यशतकम्—किसी इटालियन पत्र में आदि २।

आप अच्छे संपादक, संग्राहक और लेखक के साथ २ अच्छे समालोचक भी थे। आपने आ० विजयधर्मसूरिजी की "अहिंसादिग्दर्शन" आदि कई पुस्तकों की इटालियन भाषा में समालोचना जर्नले डेला सोसायटा एशियाटिका इटालियना के पत्रों में प्रकाशित की। इनके अलावा आपने कई लेख व ग्रन्थ संपादन किये जो हमें अज्ञात हैं।

संक्षिप्त में आप राजस्थान के होनहार साहित्यिक रत्न थे। आप राजस्थानी साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगे।

खेद है कि इस नर रत्न का केवल ३१ वर्ष की आयु हो में राजपूताना की असह्य जलवायु के कारण जुखाम होकर बीकानेर में वि० सं० १९७५ शीतकाल में स्वर्गवास हो गया।

डॉ० एल. पी. टैसीटोरी

आपके माता पिता को आपके देहान्त से अत्यन्त दुःख हुआ क्योंकि आपके भारत आने के बाद आपका छोटा भाई सन् १९१५ में जो सेना में सैनिक था पर्वत से गिर कर मर गया था।

आपकी याद में सारा राजस्थान भरपेट रोया। पर आप अमर हैं। अगर आप थोड़े वर्ष और जीते रहते तो न मालूम राजस्थान के लिये क्या २ अमूल्य सेवाएँ कर जाते। ईश्वर-इच्छा के आगे कुछ नहीं चलता। ये शब्द आपने अपने छोटे भाई की मृत्यु पर आचार्यश्री को लिखे थे।

"हिंदुगदेश" नाम की प्राचीनता

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

भारतवर्ष का आधुनिक प्रसिद्ध नाम 'हिंदुस्तान' कई व्यक्तियों के मत से १२ वीं शती के बाद से ही प्रचार में आया है। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। निशीथ-चूर्णि नामक ६ ठी व ७ वीं शताब्दी के जैनग्रन्थ में आचार्य कालक के प्रसंग में जब पारसकूल के साहि राजाओं को भारतवर्ष में आने के लिये आर्यकालक ने कहा कि चलो "हिन्दुगदेश" को चलें, उनके मुख से कहा गया है अर्थात् भारतवर्ष के लिये आज से दो हजार वर्ष पूर्व भी "हिंदुगदेश" शब्द व्यवहृत होने की सूचना मिलती है। कम से कम यह शब्द चूर्णिकार का कहा हुआ ही मानें तो भी इसकी प्राचीनता ७ वीं शताब्दी तो निश्चित ही है।

मुनि कल्याणविजयजी ने द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित अपने आर्यकालक नामक लेख में इस ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि—

"निशीथ-चूर्णि में, जो विक्रम की छठी या सातवीं सदी के आस पास की रचना है, भारतवर्ष को "हिंदुगदेश" लिखा है। इस देश का हिन्दुस्थान नाम कितना पुराना है, यह इस उल्लेख से ज्ञात होगा।"

हड़ताल शब्द एवं प्रथा की प्राचीनता

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

इधर कुछ वर्षों से 'हड़ताल' शब्द बहुत अधिक प्रसिद्धि में आ चुका है। श्रमिक-मजदूर लोग अपना श्रमाना बढ़ाने के लिये, मालिक के प्रति विरोध प्रदर्शित करने के लिये और जनसाधारण द्वारा सरकार के किसी कार्य का विरोध करने के लिये एवं विशिष्ट व्यक्ति के तिरोधान के प्रसंग पर प्रायः हड़ताल होती रहती है। बहुत से व्यक्ति यही समझते हैं कि यह शब्द एवं प्रथा बहुत आधुनिक है पर वह सही नहीं है। वास्तव में ऐसी प्रथा प्राचीन काल में थी एवं उसके लिये हड़ताल शब्द ही प्रयुक्त होता था, पर

इसकी ओर हमारा लक्ष्य ही नहीं गया। पाठकों को जानकर आश्चर्यानुभव होगा कि ५५० वर्ष पूर्व यह प्रथा इसी रूप में प्रचलित थी व उसे हड़ताल शब्द से सम्बोधित किया जाता था।

कविवर बनारसीदासजी के कथानक में सम्राट अकबर के देहावसान के संवाद से जौनपुर में भय से बजार बन्द[1] होने का उल्लेख तो है पर वहाँ हड़ताल शब्द को प्रयुक्त नहीं किया गया। पर अभी सदयवत्स कथा पर निबंध तैयार करने के उद्देश्य से भीम कवि का सदयवत्स प्रबंध पढ़ते समय अचानक हड़ताल शब्द सामने आने पर आश्चर्य सा हुआ। प्रसंग एवं प्रयोग इस प्रकार है।

"....के राजा सालीवाहन के यहाँ राजयमान्य कामसेना वेश्या थी। उसने सदयवत्स की तलवार के म्यान से एक रत्न की कंचुकी प्राप्त की। वह उसे पहिनकर पालखी में बैठ चौहटे से होती हुई राजसभा में जाने लगी। रास्ते में जिस सेठ की वह कंचिका खोई गयी थी वही मिला और उसने अपनी कंचिका को पहचान लिया पर इसकी पुकार एकेले जाने से न होते देख अन्य महाजनों को इकट्ठा कर सारा वृत्तान्त कहा। तब सब एक मत से दुकानें बन्द कर इकट्ठे हो राजसभा के आगे जाकर चुपचाप खड़े हो गये। राजा ने उन्हें इसका कारण पूछा और कामसेना को भी बुलाकर कांचली के लिये पूछा, पर कोई उत्तर न मिलने पर उसे सूली का दंड सुना दिया गया। यहां दुकानें बन्द करने के प्रसंग से हड़ताल शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा—

हाट सवे पाडी हटताल, वाल्या कामसेनि ना काल।
रा आंगणि जइ ऊभा रही, नामइ कांचन कारण कहइ॥ ६४॥
मान देईं वोलाविइ महाराज, मिल्युं महाजन केहां काज।
तु श्रीमुखि वोलाविउ सेठि, चुप तुम्ह ऊपरि जाई कदेठि॥ ६५॥

यहां हाटों (दुकानों) के ताला मारने से हटताल शब्द का व्यवहार स्पष्ट है।

---

1. इस ही बीच में नगर में सोर, भयौ उदंगल चारिहु ओर।
घर घर दर दर दिए कपाट, हटवानी नहिं बैठे हाट। २५२।

बीसलदे रासो की कतिपय नवीन प्राप्त प्रतियें

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

दश वर्ष हुए वीसलदेरासो की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के सम्बन्ध में मेरा एक लेख राजस्थानी भा० ३ अं० ३ में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् अन्वेषण करते हुये कई अन्य प्रतिएं भी प्राप्त हुई हैं। जिन प्रतियों का उक्त लेख में उल्लेख किया गया था, उस समय वे प्राप्त नहीं हुई थीं या अपूर्ण प्राप्त थीं, उनको भी देखने का सुयोग अब प्राप्त हो गया है। पूर्व प्राप्त प्रतियों से भी प्राचीन एक प्रति उपलब्ध हुई है। अतः उस जानकारी को प्रस्तुत लेख द्वारा पाठकों के समक्ष उपस्थित की जा रही है।

पूर्व प्रकाशित लेख में १९ प्रतियों का परिचय दिया गया था, जिनमें से जैसलमेर, कोटा, जयपुर की प्रतियों को देखने का तब तक सुयोग प्राप्त नहीं हुआ था व महरचन्दजी के भंडार की प्रति का केवल अंत पत्र ही पाया गया था। अब उन तीनों स्थानों की प्रतियों को भी देख लिया है व चौथी के भी प्रारम्भ के १२ पत्र प्राप्त हो चुके हैं। अतः सर्व प्रथम उन्हीं का परिचय देकर फिर नवीन ज्ञात प्रतियों का परिचय दिया जायगा।

१. जैसलमेर भंडार की १२ पत्र वाली प्रति में पद्य संख्या १०२ है एवं रचना समय सूचक पद्य नहीं है। प्रति के प्रथम पत्र का लेखन भिन्न है, अवशेष पत्र १७ वीं के लिखित प्रतीत होते हैं।

२. कोटा की प्रति को मंगवा कर उसकी नकल हमारे संग्रह के लिये कर ली गई है। इसमें महरचन्दजी के भंडारवाली प्रति की भांति ३१० पद्य हैं। ग्रन्थ के रचना काल सूचक पद्य में पूर्व लेख के निर्देशानुसार "तेरह सतोतरई" आ० सु० ५ हस्त नक्षत्र रविवार दिया गया है।

३. जयपुर की निस विद्याप्रचारिणी जैनसभा की प्रति के आधार से बीसलदे रास नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। वह सं० १६६९ लिखित महत्वपूर्ण गुटका हमारे संग्रह में खरीद करके संग्रह कर लिया गया है।

४. महरचन्द भंडार में जिस प्रति का केवल अंत पत्र ही प्राप्त हुआ था। उसके अन्य १२ पत्र सौभाग्यवश कलकत्ते के राय बद्रीदास म्युज़ियम से हमें प्राप्त

होगये हैं। इसमें रचना सूचक पद्य व पद्यसंख्या कोटा के भंडार की प्रति के समान ही है। दोनों प्रतियों का आदर्श व संस्करण एक ही रहा प्रतीत होता है।

नवीन प्राप्त प्रतियें

बीकानेर—

१. बड़े उपासरे में स्थित बृहद्-ज्ञानभण्डार के एक गुटके में सं० १६८१ लिखित प्रति में पद्य संख्या २०० ही है जो प्राप्त सभी प्रतियों से कम है। इसमें ग्रन्थ रचना का सूचक पद्य भी नहीं पाया जाता। लेखन प्रशस्ति इस प्रकार है—

"सं० १६८१ वर्षे भाद्र सुदि ६ धरणीसुत वासरे। लिखतं चवरा।"

२. खरतर आचार्य शाखा के भंडार में १६ पद्य की प्रति है जिसमें २४७ पद्य हैं। रचना काल १०७३ बतलाया है। प्रति सं० १८२६ बीकानेर में रतनसी लिखित है।

३. खरतर आचार्य शाखा के भंडार की २५ पत्र की प्रति में २६१ पद्य हैं। रचनासूचक पद्य में "सहस सतहतरइ श्रा० सु० ५ रो०" का उल्लेख है। प्रति सं० १७७३ का० ब० ११ तेजरासर में अभयधर्म की लिखित है।

४. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के एक गुटके में रासो के २४१ पद्य हैं। रचना काल सूचक उपर्युक्त "सहस सतहतरइ" वाला पद्य है। गुटका सं० १७४२ फा० सु० १३ को कविवर समयसुन्दर की परम्परा के ज्ञानतिलक का लिखित है। उसे गोरमछा पंचायण सुत जगजीवण के पठनार्थ लिखवाया है। प्रारंभ के दो पत्र प्राप्त नहीं हैं।

जैसलमेर—

५. बड़ा भंडार—गुटका नं० ५११ में २८१ गाथायें हैं। रचना काल सहस तिहुतर दिया गया है।

६. वृद्धिचन्द्रजी संग्रह—१४ पत्र की प्रति में २४२ पद्य हैं। रचना काल सूचक उल्लेख नहीं है। केवल श्रा० सु ५ रो का उल्लेख है। प्रति सं० १७१२ की लिखित है।

फलौधी--

७. अभी तक सं० १६६९ से पहले की वीसलदेरास की कोई प्रति ज्ञात न थी। गतवर्ष फलौदी के श्रीयुत फूलचन्दजी झाबक के गुटकों में एक सं० १६३९ की लिखित मिली है जिसमें प्रस्तुत रास है। इसमें २४६ पद्य हैं एवं रचना काल "सहस सतिहितरइ श्रा० सु० ५ रो" दिया है। लेखन प्रशस्ति इस प्रकार है—

"सं० १६३९ वर्षे वैशाख वदि ११ दिने आदित्यवारे लिखितं आगरामध्ये पं० सीहा लिखतं संपूर्ण।

चूंची

[लेखक—भँवरलाल नाहटा]

शीतकाल में अग्नि के निकट तपते हुए सिगड़ी में स्थित अग्नि को पतली लकड़ी से बाल-चापल्यवश सुलगा कर इतस्ततः करने को "चूंचाड़ी करना" शब्द प्रायः सभी सुनते आये हैं। बतरणा और पिन्सिल को आगे से घिसकर नुकीली करने को भी 'चूंच करना' कहते हैं। क्रुद्ध होकर किसी वस्तु के जलजाने का आदेशात्मक वाक्य—"चूंची लागो"—शब्द भी प्रसिद्ध है। यह तो हुई राजस्थान की बात। बंगाल में चूंची शब्द स्तन के अग्रभाग के लिये व्यवहृत होता है। बंगीय महिलाओं के कंचुकी परिधानाभाव में अपुष्ट और अगठित स्तनों के कारण ही निम्नोक्त कहावत प्रसिद्ध है:—

छाजा वाजा केश--तीन बंगाला देश
तेल तमाकू पान—तीन बंगालेरी जान
चून चूंची दही—तीन बंगाला नहीं

यहाँ चूंची शब्द की विवक्षा अभीष्ट है। श्रीमद् ज्ञानसारजी के पद में—"ऐसे घरके चूंची लागो" पाठ प्रूफरीडिंग के समय सामने आने से ये सब बातें फौरन ध्यान में आई और इच्छा हुई कि यह चूंची शब्द आया तो आया कहाँ से? व इसकी व्युत्पत्ति क्या है? खोज की जाय। उसी दिन सुनीति बाबू से "राजस्थानी कहावतां" की भूमिका के सिलसिले में साक्षात्कार हुआ। उन्होंने चूंची शब्द अनार्य और संथाल बतलाया। कोल लोगों में दूध के लिये प्रचलित 'शुशु' शब्द से

बना है, जिसप्रकार पय से पायोधर बना—हुआ बतलाया। मैंने जब अग्नि के अर्थ में प्रयोग होने का कहा तो उन्होंने कहा कि जलती गीली लकड़ी से चूंचूं आती हुई आवाज से ध्वन्यात्मक व्युत्पत्ति की संभावना है। इसी चर्चा में मुझे इसका हल सूझ गया। इसका कारण था एक प्राकृत (देश्य) भाषा की गाथा का स्मरण होआना। वह गाथा यह थी:—

'जल्लरि पउरे गामे, हल्ल पुलिन्दाण सुणइ सद्दो
जहा सज्जइ चींची, तहा सुहेण वोलइ तुंगी ॥ १ ॥

इस गाथा में चार शब्द देशी प्राकृत के हैं जिनका अर्थ कोषकी सहायता से निकालना कठिन है। इसकी संस्कृत छाया यों है:—

अजा प्रचुरे ग्रामे व्याघ्रादि जन्तुनां शब्दः यदि श्रूयते। झटति सद्यः अग्निं तदा सुखेन गमिष्यति रात्रिः।

यहाँ चींची शब्द अग्नि के लिये प्रयुक्त हुआ है। चींची का अपभ्रष्ट रूपान्तर चूंची हो जाना कोई असंभव नहीं बल्कि विशेष संभव भी है। श्रीसुनीतिबाबू ने इस बात का समर्थन करते हुए गाथा के दूसरे पद में आये हुए शब्द पुलिंद के लिये यह बतलाया कि दक्षिण भारत की भाषाओं में "पुल" व्याघ्र को कहते हैं। 'व्याघ्र' का यह पर्याय-शब्द नामों में भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे 'पुलकेशी'।

इसप्रकार न जाने कितने शब्दों की परम्परा किस २ भाषा के शब्दों—पूर्वजों से सम्बद्ध है, खोजकर निकालना भी एक बड़ा मनोरञ्जक विषय है।

'चूचुक' संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ स्तन के ऊपर की घुंडी (Nipple) है। हिन्दी में भी चूची स्तन को कहते हैं।

चूंचकी, चूंचाड़ी संभवतः चंचु से बने हों जिनका अर्थ लकड़ी का अग्रभाग, लकड़ी की चूंच, जो जलाई जाती है।

शब्दसंसार में नपुंसकलिङ्ग की विशेषता

[लेखक—प्रॉ. विद्याधर शास्त्री एम. ए.]

केवल हिन्दी संस्कृत में ही नहीं अपितु प्रायः समस्त भाषाओं के शब्दों में लिङ्ग की समस्या एक समस्याही बनी हुई है। संसार का सर्वोपरि पाणिनीय व्याकरण भी इस समस्या को हल नहीं कर सका। आज तक ऐसा कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं निकला जिसके आधार पर हम किसी शब्द के पुल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग द्योतक धर्म का एक तात्विक निर्णय कर सकें।

मामूली तौर पर हम शब्दों के लिङ्ग का ज्ञान कुछ निश्चित प्रत्ययों (Suffixes) अथवा हिन्दी आदि में बोलचाल की क्रियाओं के उच्चारण में कुछ हेरफेर के आधार पर करते रहते हैं परन्तु—"हाथी आती है" इत्यादि वाक्यों में 'ई' प्रत्यय अथवा "आती है" आदि से हाथी के लिङ्ग का ज्ञान नहीं हो सकता। इस अनिश्चित लिङ्ग ज्ञान की दशा अतएव अनेक बार एक ऐसे रूप को भी दिखा देती है जिसमें पुल्लिङ्ग नपुंसक और नपुंसक पुल्लिङ्ग प्रतीत होने लगते हैं।

इस समस्या के उपस्थित होने पर जब व्याकरण के विशेषज्ञों ने इस पर विचार करना आरंभ किया तो उनमें सब से पहले दो तरह की विचारधारा दिखाई देती है। कुछ विद्वानों ने लिङ्ग को (१) वस्तुधर्म अर्थात् वस्तु के पुंस्त्व और स्त्रीत्व पर आश्रित माना और कुछ ने उसको वस्तुधर्म पर आश्रित न मान कर केवल (२) शब्द पर ही आश्रित माना है। चेतन पदार्थों में स्त्रीत्व और पुंस्त्व के धर्म का ज्ञान हो सकता है. परन्तु अचेतनों में उनके आन्तरिक धर्म का निर्णय परम कठिन है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग तीनों लिङ्गों में प्रयोग होता है।

तटः, तटी, तटम्—एक प्रचलित उदाहरण है। यदि लिङ्ग केवल किसी पुल्लिङ्ग अथवा स्त्रीलिङ्ग द्योतक गुण का ही बोधक होता तो एक ही 'तट' नाम की वस्तु तीनों लिङ्गों की वाचक नहीं हो सकती। वही वस्तु पुंलिङ्ग हो और वही स्त्री और फिर वही नपुंसक भी बनी रहे—यह एक विचित्र विडम्बना होगी।

इसलिये जो पक्ष वस्तु धर्म पर लिङ्गज्ञान को आश्रित करना चाहता है वह मान्य नहीं हो सकता। लिङ्ग केवल शब्द से सम्बन्ध रखता है। शिष्ट पुरुषों ने जिस शब्द का जिस लिङ्ग के रूप में व्यवहार कर दिया हमको चाहिये कि हम उस शब्द के लिये उस लिङ्ग को ही चुपचाप स्वीकृत करलें।

बात किसी अंश में ठीक थी पर यह भी विद्वज्जनों का मनोरंजन न कर सकी। विद्वानों ने जब और गहराई से विचार किया तो उनकी दृष्टि में 'पुल्लिङ्ग' में आविर्भाव, 'स्त्रीलिंग' में तिरोभाव और 'नपुंसकलिङ्ग' में स्थितिस्थापकता की प्रधानता दिखाई दी। जगत् के प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण आविर्भाव और तिरोभाव की क्रिया चलती रहती है परन्तु जब तक किसी पदार्थ की स्थिरता का ज्ञान न हो तब तक उसमें आविर्भाव और तिरोभाव का ज्ञान नहीं होसकता। स्थिति में ही एक ऐसी परिस्थिति आती है जिसमें इन दोनों का भी ज्ञान हो सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ में आविर्भाव, तिरोभाव और स्थिरता का गुण रहता है और इस तरह से वह तीनों लिङ्गों को धारण कर सकता है।

स्थिति का एक दूसरा वह रूप भी हो सकता है जिसमें आविर्भाव और तिरोभाव दोनों तिरोभूत से दिखाई देते हैं। 'निर्गुणब्रह्म' इस परिस्थिति का एक सर्वोत्तम 'नपुंसक' उदाहरण रूप हमारे सामने आता है।

पुरुष के साथ किन्तु आविर्भाव का जो सम्बन्ध रक्खा गया वह विचारणीय है। आविर्भूति केवल पुंस्त्व में ही हो और तिरोभूति स्त्रीत्व में इसके रहस्य को समझने का प्रयत्न भी परमावश्यक है। आविर्भूति विकास और तिरोभूति ह्रासकी सूचक मानी गई है। वास्तविक स्थिति किन्तु यह है कि विकास में ह्रास और ह्रास में प्रतिक्षण विकास व्याप्त रहता है इसलिये इन दोनों के सूक्ष्म भेद का कोई निर्णय नहीं हो सकता और न इस दार्शनिक दृष्टि से लिङ्ग समस्या की जटिलता कुछ कम होती दिखाई देती है। अधिक गहराई में जाने पर इस सिद्धान्त के आधार पर यह अवश्य प्रतीत होता है कि आविर्भाव और तिरोभाव दोनों का जो व्यापार जिसमें प्रधान हो ऐसी स्थिरता वाले नपुंसक की जगत् में प्रधानता अवश्य है। जगत् शब्द का नपुंसकत्व इस नपुंसकता का ही बोधक है। लिङ्गज्ञान के आन्तरिक रूप का ज्ञान होने पर

अतः आपाततः यही ज्ञान होता है कि किसी न किसी निर्गुणी नपुंसक में ही पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग नाम के ये दो लिङ्ग दिखाई दे रहे हैं। किसी भी शब्द में केवल एक ही लिङ्ग की प्रधानता न मानकर हमको यह मानना चाहिये कि इसमें तीनों लिङ्गों के लिये स्थान है और अतएव भाषाशास्त्री अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक शब्द को मनमाने लिंग से समन्वित कर सकता है।

—डिंगल-गीतों में नवरस—

[लेखक—सीताराम लालस]

" रसो वै सः रस ए ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति । "

[तै० उ०]

उपर्युक्त श्रुति वाक्य से रस का महत्व अनादि काल से सिद्ध होता है। साहित्य-संसार और विश्व में रस अनादि काल से है। केवल उपर्युक्त श्रुति प्रमाण ही नहीं, अपितु श्रुतिज्ञान के पश्चात् प्राप्त होनेवाले समस्त ग्रंथों में रस का बड़ा विशद वर्णन है। यथा—भरत मुनि का नाट्यशास्त्र अ० ६ भगवान् वेद-व्यास कृत अग्निपुराण ३३७।३३ आनंदवर्धनाचार्यकृत ध्वन्यालोक पृ० २२१.

एक किसी प्राचीन संस्कृतज्ञ महाकवि ने रस का महत्व कितना आवश्यक बतलाया है। इस बात को अवश्य ही स्मृतिपटल से कभी दूर न करना चाहिए।

अस्तिचेद्रससम्पत्तिः अलंकारा वृथैव हि ।
नास्तिचेद्रससम्पत्तिः अलंकारा वृथैव हि ॥ १ ॥

रस शब्द कितना महत्वशाली व अनिवार्य है। इस विषय में संक्षेप में ऊपर वर्णन आ चुका है परन्तु रस क्या है? इसका हर साहित्य में आना क्यों अनिवार्य है? रस शब्द का अर्थ स्पष्टतया स्वाद लेना होता है-'रस आस्वादने' स्वाद का अर्थ रस का ग्रहण करना—"स्वादो रस ग्रहणे"। लौकिक भाषा में मुख्य रस छः माने हैं—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। इन छः ही रसों का आस्वाद लेने के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला संस्कृत भाषा में सौहित्य शब्द है। इसका तात्पर्य है कि उत्तम भोजन के रस को ग्रहण करना। आस्वाद लेना। इसी प्रकार से काव्य विषयक श्रृंगारादि रसों का आस्वाद रति आदि स्थायी भावों द्वारा रस रूप में अभिव्यक्त हो जाने पर मन से किया जाता है। लिखने का तात्पर्य यह है कि जैसे जिह्वा का रस सौहित्य है वैसे ही मन का रस साहित्य है।

ऊपर लिख आये हैं कि मन का रस साहित्य है।

साहित्य—

तो फिर साहित्य क्या है ? 'रसात्मको वाक्यं काव्यम्' रसीले वाक्य को ही काव्य कहते हैं। और यही काव्य साहित्य शास्त्र है। जिसके ज्ञान से मनुष्य को ऐहिक अथवा पारलौकिक अथवा उभय प्रकार के व्यवहार में सहायता मिले, वह शास्त्र ही साहित्य शास्त्र है।

रस और साहित्य शास्त्र की संक्षेप में परिभाषा प्राचीनता व सर्वमान्यता लिख चुकने के पश्चात् हम हमारे अभीष्ट विषय पर आते हैं। वह है राजस्थानी साहित्य। यह साहित्य कई एक प्रधान प्रकारों में हैं। उनकी प्रत्येक प्रकार की विशेषता ही भिन्न है। इनमें चारणों द्वारा रचित साहित्य चारणी साहित्य के नाम से पुकारा जाता है। यही एक राजस्थानी साहित्य है जिसने समस्त संसार को अपने ऊपर मुग्ध कर रखा है प्रधानतया यह साहित्य तीन रूपों में है।

(१) दोहों के रूप में।

(२) गीतों के रूप में।

(३) वीर काव्यों के रूप में।

हमारा प्रस्तुत निबंध गीतों से संबन्ध रखने वाला है। इन गीतों के विषय में बाहर के विद्वानों की ऐसी धारणा है कि ये गीत गाने के हैं, और इन में मुख्य रस वीररस ही है. अन्य रस नहीं के बराबर है। परन्तु यह बात नहीं है। यह तो सर्व सम्मत है कि डिंगल गीत-साहित्य में भाषा-विज्ञान के अनुसार अपभ्रंश शब्दों का बाहुल्य है। केवल एक इस कारण से ही ये वीररस के प्रधान पोषक हैं। वीररस का साहित्य तो डिंगल-भाषा के तुल्य अन्य किसी भी भाषा में नहीं है और ये गीत (छंद-विशेष) इस भाषा के प्रमुख अंग हैं, तो फिर इन में वीररस का होना स्वाभाविक है। यदि हमारा कथन अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा तक न पहुंच गया हो तो स्वीकार करना होगा कि व्यास और बाल्मीकि से लेकर अर्वाचीन संस्कृत कवियों तक किसी कवि ने भी संस्कृत क्या किसी भी भाषा में वीररस का इतना ओजस्वी वर्णन नहीं किया है जितना डिंगल भाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है। परन्तु इस से यही न समझ बैठना चाहिए कि इन गीतों में अन्य रस हैं ही नहीं और हैं तो नाम मात्र के बराबर। वैसे तो इन गीतों में नव ही रसों की तरंगिणी कलकलनाद से प्रवाहित है परन्तु वीर, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक और शान्त रस तो मूर्तिमान ही प्रतीत होते हैं। यथा—

श्रृंगाररस—

कामदेव के उद्भेद (अंकुरित) को संस्कृत भाषा में श्रृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगाररस कहलाता है। परस्त्री तथा अनुरागशून्य वेश्याओं को छोड़कर समस्त नायिकाएं तथा दक्षिण आदि नायक इस रस के आलम्बन विभाव माने गये हैं। चंद्रमा, चंदन, भ्रमर आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं। प्रेमपूर्ण भ्रुकुटि भंग और कटाक्ष आदि इस रस के अनुभाव हैं। उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर अन्य निर्वेदादि इसके संचारी भाव हैं और इसका स्थायी भाव रति है। यह श्रृंगार रस दो प्रकार का है। संयोग और विप्रलंभ (वियोग)।

छःहों ऋतुओं का वर्णन, सूर्य, चन्द्रमा का वर्णन, उदय और अस्त का वर्णन, एवं जल-विहार, वन-विहार, प्रभात, मद्यपान, रति क्रीड़ा, चन्दनादि लेपन, भूषण-धारण तथा और जो कुछ भी स्वच्छ उज्ज्वल ग्राह्य वस्तु उन सब का वर्णन श्रृंगाररस है और यही वर्णन डिंगल गीतों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। प्रत्येक का उदाहरण देने के निमित्त हमारे इस छोटे से लेख में स्थान की कमी है। यहां पर हम दो उदाहरण देते हैं*।

संयोगश्रृंगार—

* गीत वेलियो *

वर नारी नेत्र निज वदन विलासा, जांणियौ अन्तहकरण जई।
हँसि हँसि भ्रूहें हेक हेक हुई, ग्रह बाहरि सहचरी गई॥ १७२॥
एकान्त उचित क्रीड़ा चौ आरंभ, दीठौ सु न किहि देव दुजि।
अदिठ अश्रुत किम कहणौ आवै, सुख ते जांणणहार सुजि॥ १७३॥
पति पावन प्रारथित त्री तत्र निपतित, सुरत अन्त केहवी श्री।
गजेन्द्र क्रीड़ता सु विगलित गति, नीरासइ परि कमलिनी॥ १७४॥

(वेलि क्रिसन रुकमणी री)

भावार्थः—[श्रीकृष्ण और रुक्मिणी विवाह के पश्चात् प्रथम सौभाग्य रात्रि का वर्णन कवि ने किया है।] रुक्मिणी की सहेलियों ने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के नेत्रों और उनके मुख की चेष्टाओं से उन दोनों के हार्दिक भावों को जान लिया, तब सहेलियां अपने भौंहों को मटकाती हुई एक एक होकर बाहर चली गई।

---

* जिन महानुभावों को डिंगल भाषा में श्रृंगाररस विषय की अधिक जानकारी करनी हो वे श्रीकृष्ण रुक्मणी की वेली, रुक्मणी हरण, शिवबक्षजी पाल्हावत कृत षड्ऋतु वर्णन आदि पुस्तकें पढ़ें।

तब श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने एकान्त स्थान में होने योग्य रतिक्रीड़ा को प्रारंभ किया। उस क्रीड़ा के रस और आनन्द को प्राप्त करते हुए श्रीकृष्ण और रुक्मिणी को किसी भी देवता ऋषि आदि ने नहीं देखा। ऐसे न देखे न सुने हुए आनन्दानुभव को मैं (पृथ्वीराज) कैसे वर्णन कर सकता हूँ। उस आनन्द को जानने वाले श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ही हैं।

सुरत-प्रसंग से थकित श्रीरुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से पंखा झलने की प्रार्थना की। रति क्रीड़ा से थकित पर्यङ्क पर पड़ी हुई श्रीरुक्मिणी ऐसी शोभायमान प्रतीत होने लगी मानो मस्त हाथी द्वारा तोड़ी हुई कमलिनी म्लान दशा को प्राप्त होकर सरोवर में पड़ी हो।

नायिका श्रीरुक्मिणी के हृदयस्थित रति स्थाई भाव श्रीकृष्ण नायक आलंबन विभाव और एकान्त स्थान का मिलना और सहेलियों का चलाजाना उद्दीपन विभाव है। कवि का कैसा अनूठा वर्णन है। इसमें शंका के साथ उत्सुकता भी है। यही व्यभिचारी भाव है।

विप्रलंभश्रृंगार—

जहां पर अनुराग अति उत्कट हो परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रलंभश्रृंगार कहते हैं। अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। ये दश काम दशाएं विप्रलंभश्रृंगार में होती हैं।

गीत-झमाल

किती वियोगिण कांमणी, पती जिकां परदेस।
लखी घटा घण री लहर, विलखी हिये विसेस॥
विलखी हिये विसेस, सखी दुख किम सहाँ।
विरहविथा विसतार, कथा किणनूं कहाँ॥
उमड़ घटा निस अहर, कहर वरखा किसी।
उठे लहर तन आय, जहर वासक जिसी॥

भावार्थ:—वर्षाऋतु का वर्णन है। बादलों की लहरें देख-देख कर वियोगिनी के हृदय में हूक उठरही है। वह बिलख-बिलख कर अपनी सहेलियों से कह रही है, हे सखियो! मैं यह दुख किस प्रकार सहूं? मेरे विरह की व्यथा बढ़ गई है। इस का दर्द किसे कहूं। इस की कहानी कौन सुनेगा? उमड़ उमड़ कर घटाएं दिन रात बरसती हैं। यह वर्षा कैसी? यह तो कहर है—वज्रपात है। इसे देखकर तो मेरे तन में वासुकि सांप के जहर की सी लहरें उठरही हैं जिसके मारे मैं तड़प तड़प कर जल रही हूं।

बादळ नहिं दळ विरह रा, आया मिळि अप्रमाण ।
सोर सिखंड्यां नहीं सखी, जोर नकीबां जांण ॥
जोर नकीबां जांण, घोर घण री नहीं ।
ठई अमागळ ठोर, मदन जीपण मही ॥
संपा नहीं समसेर, कढ़ी न्रप काम री ।
अब की जीवण आस? वियोगण वाम री ॥

भावार्थ:—हे सखी! ये बादल नहीं हैं। यह विरह की फौज है। यह संघटित हो कर छापा मारने के निमित्त आये हैं। यह मोरों के बोलने की आवाज नहीं है। नकीबों का शोर है। यह बादल नहीं गरज रहे हैं, नकीबों के जोशीले शब्द हैं। कामदेव ने संसार को पराजित करने के लिए कूच का नकारा बजा दिया है। यह बिजली नहीं चमक रही है, कामदेव की तलवार चमक रही है। निराश हो कर वियोगिनी नायिका अपनी सखी से कहरही है अब विरहिणियों के जीने की आशा नहीं।

हेली! सिळगै मो हियो, रयो तड़फि दिन रात ।
बालम छयो विदेस में, जो दुख सह्यो न जात ॥
जो दुख सह्यो न जात रात बरसात की ।
घाले प्राणां घात पपिहियो पातकी ॥
कांठळ स्यांम कनात आत चढ़ि चढ़ि अणी ।
जमरी जांण जमात बात मुसकल बणी ॥

भावार्थ:—हे सखी! मेरे हृदय में आग प्रज्वलित हो रही है। दिन रात कलेजा तड़प रहा है। मेरा पति परदेश है। मेरे लिए यह दुख दुस्सह हो रहा है। वर्षाऋतु की रात्रि है। पापी पपीहा मेरे प्राणों की घात लगाये बैठा है। काले काले बादलों की फौज आरही है। यह दल ऐसा प्रतीत होरहा है मानो यमराज की जमात हो—बड़ा ही कठिन दुस्सह समय आगया है।

घूमी घणहर री घटा, विरछां लूंमी वेल ।
नरां विलूंमी नारियां, खरो हजूमी खेल ॥
खरो हजूमी खेल, केल थिर चर करैं ।
पाज सरोवर पेल, भली छवि सूं भरै ॥
मिळी धरा मघवांन, सरित समदां चली ।
अली! रही हूं आज, अभागण एकली ॥

भावार्थ:—घटाएं घुमड़कर आई हैं। बेलें वृक्षों पर लिपटरहीं हैं। नायिकाएं अपने प्रियतमों से लिपट रहीं हैं। सच्चा नैसर्गिक खेल है। चर अचर सभी आनंदित होरहे हैं। तालाब लबालब भर गये हैं। भूमि भी

अपने प्रियतम मेघ से मिलगई है। नदियें समुद्र से मिलाप करने के निमित्त चलपड़ी हैं। इस प्रकार सारी सृष्टि केलि में रत है। हे सखी! आज मैं अभागिनी ही अकेली हूं।

सोर मोर सुणतां सखी, जोर दुखी छै जीव।
वैरी तूं तो बकसि रे, पपिहा बोल न पीव॥
पपिहा बोल न पीव, कहै मैं की कियौ।
मारी ने मत मार, हिलोळा ले हियो॥
लागी दाझै लूंण, जलण है जीव रो।
वैरी बोल म बोल, पपिहा पीव रो॥

[शिवबख्शजी पाल्हावत अलवर कृत षड्ऋतु वर्णन से]

भावार्थः—हे सखी! मोरों का शोर सुनने से हृदय अकुला रहा है। हे वैरी पपीहे! तूं मुझे क्षमाकर पिउ पिउ मत पुकार। पपीहा प्रत्युत्तर में कह रहा है, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? नायिका प्रत्युत्तर में वापिस कह रही है, हे पपीहे! ऐसे ताने मारकर तूं मुझ मरीहुई को माररहा है। मेरे हृदय को मत जला। तेरी बोली से मेरे घावों पर नमक बरसता है। मेरा हृदय जला जारहा है। तू पीव पीव की पुकार मत कर।

उपर्युक्त गीत के वर्णन में— पति प्रवास में है। वर्षाऋतु का आगमन है। एक सखी अपनी सहेली से वियोग जनित व्यथा का वर्णन कर रही है। यहां स्थायी भाव रति है। वर्षाऋतु का होना उद्दीपन विभाव है। पति का प्रवास आलंबन विभाव है। वियोगजनित उद्वेग, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। कैसा अनूठा वर्णन है? सहृदय पाठक ही इस पर विचार करें।

हास्यरस—

विकृत आकार, वाणी, वेश तथा चेष्टा के वर्णन को हास्यरस माना है। इस रस का स्थायी भाव हास है। जिसकी भद्दी आकृति, वाणी, वेश और चेष्टा आदि को देखकर लोग हँस पड़े वही हास्यरस का आलम्बन विभाव और उक्त चेष्टाएं आदि उद्दीपन विभाव का कार्य करती हैं। नेत्रों का मुकलित होना, मुख पर मुसकराहट आना इस रस का अनुभाव है। निद्रा, आलस्यादि इस रस के संचारी भाव हैं। यथा—

* गीत – छोटो सांणोर *

संकती बहु कहे सुणो सासुजी, अतरा कांई उदासी।
मो कंथ तणो भरोसो मोनै, ओ कुसळां घर आसी॥ १ ॥
अडतां लार भागतां आगै, वातां घणी वणासी।
बागां खाग नणद रो बीरो, आगै भाग र आसी॥ २ ॥

ससतर स्याम दे आया सारा, कपड़ा बीच कुमाया ।
म्हैं तो बात करे ही आगे, अतरे उघाड़ा आया ।। ३ ।।
महीना नौ राख्यो उर मांही, आगम वातां आछी ।
कहती जिसो तिहारो कंथो, साची थै बहु सची ।। ४ ।।

भावार्थ—एक कायर राजपूत युद्ध में गया है । उसकी कायर माता उदास बैठी है । बहु आकर अपनी सास को समझा रही है । आप चिन्ता मत करो । मुझे मेरे पतिदेव का पूर्ण विश्वास है कि वह युद्ध-विमुख होकर अवश्य कुशल-पूर्वक घर आ जायगा ।

मेरा प्रियतम युद्ध में पीछे रहेगा और उन कायरों में सदैव अग्रणी रहेगा जो युद्धस्थल को छोड़ कर भाग आते हैं । निरी थोथी बातें बनाया करेगा । मेरी नणद का भाई (आप का पुत्र) युद्धभूमि में तलवार चलने पर सबसे प्रथम भागकर घर आजायगा ।

अपने अस्त्रशस्त्र भी गुमा कर आयगा । अधिक क्या विश्वास दिलाऊं वह अपने पहिनने के कपड़े भी गुमा कर आयगा । ये बातें हो ही रहीं थीं कि उक्त व्यक्ति नंगधड़ंग युद्ध से भाग कर चला आया ।

सास ने अपनी बहु से कहा, मैंने इसे नौ मास तक अपने उदर में रक्खा, पर तू ने इसके लिये सत्य ही भविष्यवाणी की ! हे बहु ! तू सत्य है ! तेरा पति तू कहती थी वैसा ही निकला ।

कायर का युद्ध से अस्त्रशस्त्र वेषादि गुमा कर नंगधड़ंग वापिस आना आदि हास्य है ।

करुणरस—

इष्ट पदार्थ के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरस आविर्भूत होता है । इसका स्थायी भाव शोक है और विनष्ट बांधवादि शोचनीय व्यक्ति आलम्बन विभाव होते हैं एवं उसके दाहकर्म आदि उद्दीपन विभाव होते हैं । प्रारब्ध की निन्दा, भूमिपतन, रोदन, विवर्णता, उच्छ्वास, निश्वास, स्तम्भनादि इस रस के अनुभाव हैं । निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद और चिन्तादि इस रस के व्यभिचारी भाव हैं ।

उदाहरण—

* गीत – जांगड़ो सांणोर *

[स्व० कविवर ऊमरदानजी लालस]

आवे जद याद गया तद आने,
देख दसा दुखियारी ।

रसा गयो तू राजेसुर,
छोड़ जसा छत्रधारी ॥ १ ॥
रही स्वछंद रैत तव राजस,
सुभ अमंद सुखियारी।
आणंदकंद एक दम उठगयो,
तखतनंद अवतारी ॥ २ ॥
राजसथान रटै कविराजा,
कीरत दान कहांणी।
गयो जहान हूंत गुणग्राहक,
मान-हरो मांडांणी ॥ ३ ॥
इर घड़ियो हित सूं निज हाथां,
जड़ियो गढ़ जोधांणी।
झळ झळाट करतो नग झड़ियौ,
पड़ियौ लंब पयांणी ॥ ४ ॥
अठै सोध अवरोध अचानक,
योध मोद विसराये।
प्राणनाथ! हा! नाथ! जोधपुर,
गोख सोध गणणाए ॥ ५ ॥
हा! हा! दिए घरोघर हेलां,
पुरजन दिए प्रळापा।
जिये जिके नहिं जिये जाण जग,
किये अनेक कळापा ॥ ६ ॥
धुधी चराकां हा! दिन धोळे,
मादिन सोर मचायो।
नाद सुवादन पति निसा दिन,
सादिन नहीं सुहायो ॥ ७ ॥
व्याकुळतां घुळतां बळतां वह,
मरघट पुळतां माली।
आकुळतां अंतिम असवारी,
चवरां ढुळतां चाली ॥ ८ ॥

भावार्थः— [महाराजा जसवन्तसिंहजी द्वितीय के स्वर्गारोहण के समय महाकवि ऊमरदानजी लालस ने यह मरसिया कहा है]

कवि कहता है कि हे महाराजा जसवन्तसिंह! तेरे देहावसान की जब कभी याद आती है और प्रजा में तेरे वियोग की आर्तावस्था को देखता हूं तो

उसी समय मूर्छा आजाती है। हे महाराजा जसवन्तसिंह ! तू हम सबको भूमि पर विलाप करते हुये छोड़कर स्वर्गवासी होगया ॥ १ ॥

हे महाराजा जसवन्तसिंह ! तेरे शासनकाल में प्रजा बड़े आनन्द मंगल में रहती थी। महाराजा तखतसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह का देहावसान नहीं हुआ है बल्कि मारवाड़ का आनन्द मंगल यकायक ही चला गया ॥२॥

राजस्थान के कवि लोग तेरे दान और उदारता की कथा का बार बार वर्णन कर रहे हैं । संसार में तेरे जैसा गुणवानों की कदर करनेवाला यकायक ही चला गया, बड़ा दुख है ॥३॥

ब्रह्मा ने बड़े परिश्रम से अपने ही हाथों से तुझे जोधपुर के सिंहासन के निमित्त एक अमूल्य रत्न के तुल्य बनाया था। वही रत्न आज अकस्मात् ही झलझलाहट करता हुआ उक्त सिंहासन से दूर गिरगया और लम्बे मार्ग (स्वर्ग) की ओर चल पड़ा जहां से वापिस मिलने की फिर उम्मीद नहीं की जाती है। ४ ॥

राज्यमहलों व अन्तःपुर में अकस्मात् ही आमोद, प्रमोद और ज्ञान को विसरा दिया गया। हे प्राणेश्वर ! हे जोधपुर के स्वामी ! महाराजा जसवन्तसिंह ! इस प्रकार की अमांगलिक हाहाकार की आवाज चारों ओर होने लगी ॥ ५ ॥

केवल राजमहलों और अन्तःपुर ही नहीं जोधपुर नगर में भी घरघर हाहाकार का भयंकर रव हो रहा है। नागरिक जनों के हृदय में तेरे वियोग की भयंकर ज्वाला उठ रही है। वे सब विलाप कर रहे हैं । जो जीवित हैं वे भी मरणप्राय हैं। उन्हें जीवित नहीं समझना चाहिए। इस प्रकार से चारों ओर विलाप हो रहा है ॥ ६ ॥

दिन में ही चरागें जलने लगी हैं। स्त्रियों में भारी हाहाकार का घोर रव हो रहा है। मांगलिक वाद्य बजने बंद हो गए हैं। उनकी ध्वनि अप्रिय हो गई ॥ ७ ॥

इसप्रकार चारों ओर प्रजा में अशांति का साम्राज्य छा गया। श्मशान की तरफ तेरी अन्तिम सवारी चँवरादि ढुलती हुई चली ॥ ८ ॥

इस गीत में महाराजा जसवन्तसिंहजी के देहावसान के शोक से व्याकुल कविवर ऊमरदानजी लालस का विलाप है । इसीप्रकार बन्धु वियोग और धन नाशादि से भी करुणारस प्रकट हो सकता है और डिंगल गीतों में तो इसप्रकार के सैकड़ों गीत हैं।

रौद्र-रस—

इस रस में क्रोध स्थायीभाव होता है। इसका आलंबन शत्रु होता है और उसकी चेष्टाएं उद्दीपन विभाव मानी गई हैं। भृकुटि भंग, होठ चबाना,

ताल ठोंकना, डांटना, शस्त्र घुमाना, उग्रता, आवेग, रोमांच, स्वेद, वेपथु आदि इस रस के अनुभाव हैं। आक्षेप करना, क्रूरता से देखना, इस रस के संचारी भाव हैं।

उदाहरण—

गीत छोटो सावझड़ो सांणोर।

चख लागां धिखै चहुंदिस चोळै।
हीलोहळ सातूं हीलोळै॥
अधपत सको ताहरै ओळै।
ख़ग आज किणी सिर तोलै॥ १॥

खंड देवड़ा भर डंड संधी।
सगपण कर माटी सनमंधी॥
थारां मिळै तूझ सूं संधी।
वळ दाखै किण सिर गजबंधी॥ २॥

पूरब पछम धरा दध पारू।
दिखण तणो खूटो बळ दारू॥
सक उतराद धरा तो सारू।
मछर धरै किण ऊपर मारू॥ ३॥

वाजै वळै चहुंदिस वाजा।
सूर-तणा उत्तर दध साजा॥
पूगो जस सातूं दध पाजा।
रोस धरै किण ऊपर राजा॥ ४॥

[चतुरा मोतीसर कृत]

भावार्थ :—[चतुरा मोतीसर डिंगल का महाकवि था। उसने भीम शीशोदिया की प्रशंसा में एक गीत रचा था जिसमें जोधपुर के तत्कालीन महाराजा गजसिंह की कुछ निन्दा थी। जब गजसिंह को इस बात की सूचना मिली, तो उन्होंने चतुरा को पकड़ कर लाने की आज्ञा दे दी। जब चतुरा महाराज के सामने आया तो उस पर महाराजा ने बड़ा क्रोध किया और उसको मारने के लिये तलवार म्यान से निकाली तब चतुरा ने वहीं खड़े २ यह उपर्युक्त गीत सुनाया, जिसमें महाराजा गजसिंहजी के उग्रकोप का वर्णन है।]

कवि कहता है कि हे महाराजा! आप के नेत्रों में क्रोध की लाली* आजाने पर चारों दिशाएं और सातों समुद्र कम्पायमान हो जाते हैं। बादशाह तक आपकी शरण में है, फिर आज आप अपनी तलवार किसके सिर पर तोल रहे हैं?

---

*नेत्र और मुख क्रोधावेश से इसी रस में लाल होते हैं। वीररस में नहीं, क्योंकि वीररस का स्थायीभाव उत्साह है।

देवड़ा आदि सब राजपूत आपका प्रभुत्व स्वीकार कर दण्ड (खिराज) भर रहे हैं। और भाटियों ने अपनी कन्याएं आपको देकर सम्बन्ध जोड़ दिया है। सब क्षत्रियवंशों ने आपसे संधि कर रखी है। फिर हे महाराजा! आज आप किसको अपना बल दिखा रहे हैं?

पूर्व से पश्चिम समुद्र पर्यन्त आपका प्रताप फैला हुआ है। दक्षिण और उत्तर में भी आप ही की दुहाई है। फिर हे गजसिंह! आज किस पर कोप कर रहे हैं?

हे सूरसिंह के पुत्र गजसिंह! आपके यश रूपी बाजे की ध्वनि चारों दिशाओं और सातों समुद्रों के पार फैल चुकी है। फिर आज आप किस पर क्रोध कर रहे हैं?

वीररस :—

उत्तम पात्र (नायक) आश्रित वीररस होता है। इस रसका स्थायी भाव उत्साह है। इसमें पराजित होने वाले शत्रुदल आदि आलम्बन विभाव हैं और उनकी चेष्टाएं आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक अस्त्रशस्त्र आदि अनुभाव हैं। युद्ध में धैर्य, गर्व, स्मृति, तर्क आदि संचारी भाव हैं।

दान, धर्म, दया और युद्ध के कारण यह वीररस चार प्रकार का होता है। यहां हम प्रत्येक के अलग २ उदाहरण डिंगल गीतों में दे रहे हैं।

दानवीर :—

गीत छोटोसांणोर

(दुरसा आढा कृत)

पताळ जठे बळि रहण न पाऊं, रिध मांडै क्रण सरग रहे।
मो म्रितलोक रायसिंघ मारे, कठै रहूं हरि दळिद्र कहै ॥१॥
वीरोचंद सुत अहिपुर वारे, रविसुत तणो अमरपुर राज।
निज दातार कलावत नरपुर, अनंत रौर गत केही आज ॥२॥
रेणा दियण पाताळ न राखै, कनक स्रवण हुओ कविलास।
महिपुड़ गजदातार सु मारै, विसन किसे पुड़ मांडू वास ॥३॥
नागदेव नरलोक निरखतां, हेक ठौड़ छै कहे हरि।
वरि ओरि नान्हा सिंघ घातिया, कुरद जठी जाइ बास करि ॥४॥

भावार्थ:—[बीकानेर के महाराजा रायसिंह ने शंकर बारहठ को सवा करोड़ रुपयों का दान दिया था, उसकी सूचना मिलने पर कविवर दुरसा आढा ने उपर्युक्त गीत अपनी अनूठी सूझ का रचा था। इस गीत में दानवीर महाराजा

रायसिंहजी से पराजित होकर दरिद्र भगवान् विष्णु के पास पुकारू जाकर अपने रहने के लिये स्थान की प्रार्थना कर रहा है]

दरिद्र भगवान् विष्णु से कह रहा है कि मुझे पाताल में राजा वलि रहने नहीं देता, स्वर्गलोक में दानवीर कर्ण बड़ा दानी है, वहां पर भी मेरा निर्वाह नहीं हो सकता है। मृत्युलोक में बीकानेर महाराजा रायसिंह बड़ा दानी है, वहां पर भी मेरी नहीं निभ सकती। पाताल, स्वर्ग और मृत्युलोक इन तीनों में रहने के लिये स्थान नहीं मिल रहा है, फिर आपही बतलाइए मैं कहां रहूं।

नीचे की दो द्वालों का यही भावार्थ है। चतुर्थ द्वाले में भगवान् ने दरिद्र को समझाया है कि तू रायसिंह के शत्रुओं के घर पर वास कर सकता है, अन्यत्र नहीं।

यहां पर महाराजा रायसिंहजी का, वदान्यता में उत्साह स्थायीभाव है। दानपात्र कविलोग आलंबन विभाव हैं। महाराजा की गुण-परायणता आदि उद्दीपन विभावों से विभावित हो रही हैं। इसीप्रकार दान देने में हर्ष, धैर्य आदि संचारी भाव हैं।

धर्मवीर—

— गीत वडो सांणोर —

(कविराजा बांकीदास कृत)

प्रथम नेह भीनौ, महा क्रोध भीनौ पछै ।
लाभ चमरी समर झोक लागै ।
राय कवरी वरी जिण वागै रसिक ।
वरी घड़ कवारी तेण वागै ॥ १ ॥
हुवै मंगळ धमळ, दमंगळ वीर हक ।
रंग तूठौ कमंध जंग रूठौ ।
सघण वूठौ कुसम वोह जिण मोड़ सिर ।
विखम उण मौड़ सिर लोह वूठौ ॥ २ ॥
करण अखियात चढ़ियौ भलां काळमी ।
निभावण वैण भुज वांधियो नेत ।
पधारां सदन वरमाळ सूं पूजियौ ।
खळां किरमाळ सूं पूजियौ खेत ॥ ३ ॥
सूर वाहर चढ़ै चारणां सुरभि हि ।
इतै जस जितै गिरनार आबू ।
विहंड खळ खीचियां तणा दळ विभाड़ै ।
पोढ़ियौ सेज रणभोम पाबू ॥ ४ ॥

भावार्थ— वीर पाबू राठौड़ ने चारणों से एक घोड़ी मांग कर ली थी और वचन दिये थे कि जब कभी आपकी गायों की रक्षा के निमित्त मुझे बुलाओगे तभी मैं तैयार रहूँगा । धर्मवीर पाबू की शादी उमरकोट में होना निश्चय हो गया। वीर पाबू भाँवरी में ही था, उसी समय गायों की रक्षा करने के निमित्त चारणों की पुकार आई । बस, फिर क्या था? प्रतिज्ञावीर (धर्मवीर) पाबू ने तनिक भी देरी नहीं की और अपनी कालमी घोड़ी पर सवार होकर गायों की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ । धर्म पर कुर्बान होने वाले ऐसे सैकड़ों धर्मवीरों की प्रशंसा में रचे हुए हजारों गीत उपलब्ध होते हैं। धर्मवीर पाबू की तुलना में धर्मवीर का उदाहरण संसार के साहित्य में उपलब्ध होना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है।

भावार्थ— कवि कह रहा है कि वीर पाबू प्रथम तो विवाह की तैयारी से स्नेहपूर्ण हुआ परन्तु गायों की रक्षा के निमित्त उसे शीघ्र ही क्रोध आया। शीघ्र ही भांवरी को छोड़ कर युद्ध की तैयारी करने लगा। जिन वस्त्रों से उसने राजकुमारी के साथ पाणिग्रहण किया था उन्हीं वस्त्रों से युद्ध के लिए तैयार हुआ॥ १॥

प्रथम तो विवाह के मांगलिक गाने गाये गये, शीघ्र ही युद्ध के लिये वीर योद्धाओं की हाक हुई । विवाह के समय जिस मस्तक पर रंग पुष्पादि की वर्षा की गई थी, उसी सेहरे पर तलवारों की वर्षा हुई ॥ २ ॥

धर्मरक्षा का अद्भुत कार्य करने के लिये वीर पाबू अपनी कालमी घोड़ी पर सवार हुआ। अपने वचनों को पूर्णतया पालन करने के निमित्त ही वीर पाबू ने युद्ध की तैयारी की। प्रथम तो उमरकोट में सोढा (पंवार राजपूतों) ने गले में वरमाला डाल कर पाबू की पूजा की किन्तु शत्रुओं ने उसी गले में तलवारों से घावों रूपी मालाएं डालकर युद्धक्षेत्र में उसकी पूजा की ॥ ३ ।

वीर पाबू ने चारणों की गायों की रक्षा के निमित्त जो युद्ध किया, उस युद्ध का यश चिरस्थायी रहेगा, जब तक भूमि पर आबु और गिरनार पहाड़ हैं। उसने खीची राजपूतों की फौज को गायों की रक्षा करते हुए मारडाली और स्वयं भी युद्ध में धराशायी हुआ ॥ ४ ॥

युद्धवीर—

* गीत वड़ो सांणोर *

पड़ै मार गोळां सरां अलंग उड़ उड़ पड़ै ।
गयण रथ अड़वड़ै परी गैलां ॥
किला मत डग मगै सूर जोगो कहै ।
परत मो जीवतां न दूं पैलां ॥ १ ॥

भळाई लाज सेखां-धणी मो भुजां ।
गरठ थट हैमरां करूं गज गेर ॥
श्रोझके मती छबतो रहे आभ सूं ।
अमरां तमासा देख आसेर ॥ २ ॥

भणै भुरजाळ हूं जोध रो महाभड़ ।
धड़ा लख वैरियां तणी धावै ॥
साबतो जिते धड़ ऊपरा मूझ सिर ।
अवै अरि तूझ सिर नाहिं आवै ॥ ३ ॥

भावार्थः—[जयपुर के वीरवर जुगतसिंहजी शत्रुसैन्य के आक्रमण के समय में अपने किले को धैर्य धारण कराते हुए उत्साह और जोशपूर्ण शब्दों में कह रहे हैं]

तोपों के गोले दनादन चल रहे हैं। ऊंचे २ टीलों पर वे पड़ रहे हैं। आकाश मार्ग में अप्सराओं के रथ परस्पर भिड़ रहे हैं। ऐसे विकट समय में वीरवर जुगतसिंहजी किले को जोश भरे शब्दों में कह रहे हैं कि हे किले! तू डगमगा मत अपने जीते जी मैं तुझे दूसरे को नहीं सौंपूंगा ॥ १ ॥

सेखावतों के स्वामी ने अपनी मानमर्यादा की रक्षा का भार मेरी भुजाओं पर छोड़ दिया है। मैं घोड़े और हाथियों को मारकर ढेर लगाढूंगा पर हे किले! तू घबरा मत, आकाश से निशंक टक्कर लेता रह, तलवारों के तमाशे देख ॥ २ ॥

शत्रुदल को देखकर वह महा युद्धवीर किले से फिर कह रहा है कि हे किले! मेरे धड़ पर जब तक यह सिर है तब तक दुश्मन तेरे सिर पर नहीं आयेगा ॥ ३ ॥

दयावीर—

* गीत झड़लुपत *

डेरा रोपिया उतर दिस डारण।
मन नहचै लंकेसर मारण ॥
पळै विचार करै लिखमीवर।
धरै जनम मरजादा धारण ॥ १ ॥

खळ खूनी है तो घण खायक ।
दुनिया दुज देवां दुखदायक ॥
करण उर आणी इण कारण ।
निरखै कुळ ब्राह्मण उर नायक ॥ २ ॥

भरयो पूर अघ जगत अभावण ।
आगम मत कीधो फिर आवण ॥
अवर दूत मेले समझायो ।
राहस अजु समझे तो रावण ॥ ३ ॥

ईखे बालसुतण बुधआगर ।
नीत निपुण साहस जससागर ॥
आयस पाय अवधपुरवासी ।
गो लंका कपि वंसउजागर ॥ ४ ॥

भावार्थः—शक्तिशाली रामचन्द्र भगवान ने मन में रावण को मारने का निश्चय करके डेरे को उत्तर दिशा में खड़ा कर दिया फिर विचार किया कि मैंने तो मर्यादा रखने के लिये अवतार लिया है ॥ १ ॥

यह दुष्ट अपराधी बहुत बुरा है और संसार में ब्राह्मण देवतादि को दुख दे रहा है। फिर भी रामचन्द्र ने ब्राह्मण समझ कर उस पर दया कर दी ॥२॥

रामचन्द्र भगवान ने मन में विचार किया कि वह पाप से भरा है और संसार को बहुत ही बुरा मालूम हो रहा है । उसकी मृत्यु आगई है किन्तु रावण अब भी समझ जाय तो दूत भेज कर उसे समझाना चाहिए ॥ ३ ॥

ब्राह्मण होने से रावण पर दया आई तो बुद्धि का खजाना नीति-निपुण बाली के पुत्र अंगद को समझाने के लिये भेजा ॥ ४ ॥

इन उदाहरणों से भी अनुभावादि पूर्ववत ही समझ लेने चाहिए ।

वीभत्सरस—

वीभत्सरस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। दुर्गन्ध युक्त मांस, रुधिर, अस्थि, चर्बी आदि इसके आलंबन होते हैं। इन्हीं में कीड़े पड़जाना आदि उद्दीपन होते हैं। थूकना, मुंह फेर लेना, आंख मीचना आदि इसके अनुभाव हैं। मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि और मरण इस रस के संचारी भाव हैं।

उदाहरण—

* गीत—छोटो सांणोर *

अकबर दळ आळ सावळां ओखण ।
जूंझ कळह माथै रण जंग ॥
खदां तणै रगत सूं राणै ।
राता किया पहाड़ां रंग ॥ १ ॥

रंग हैवर नर चाढे बैगर।
कुंजर घण घांण मयांण कर॥
आद्हाड़ै डूंगर आपांणा।
आछे रंग रंगिया अमर॥ २॥

असुरां घाट माट ऊकाळै।
घाट घाट वन पतसाह घड़॥
सांग कळोधर किया सावरत।
आपांणा जूना बह अनड़॥ ३॥

पग पग पाड़ राड़ केलपुरा।
रंगिया चोळ मजीठां रोद॥
पातळ तणा पुराणा परवत।
सिणगारिया वडे सीसोद॥ ४॥

मांसाचरां धपाड़ै मांसां।
वांसां करै अमावड़ वाड़॥
मावै नहीं पहाड़ां मांहे।
हाथ्यां रा दांतूसळ हाड़॥ ५॥

भावार्थ—अकबर की सेना धान रूपी वृक्ष है जिसको महाराणा अमरसिंह ने अपने भाले रूपी मूसल से कूट २ कर युद्धभूमि के पहाड़ों को रंग दिया॥ १॥

महाराणा ने मुसलमानी सेना के सैनिकों, हाथियों व घोड़ों को मारकर उनके रक्त रूपी रस से अपने पहाड़ों को लाल कर दिया॥ २॥

महाराणा ने बादशाही सेना को पर्वतों की घाटी रूपी मटके में उबाल, उनके रक्त रूपी रस से अपने पहाड़ों को सींच कर लाल बना दिया॥ ३॥

केलपुरे महाराणा ने कदम कदम पर युद्ध करके शत्रुओं के खून रूपी मजीठ से अपने पहाड़ों का शृंगार किया॥ ४॥

महाराणा ने शत्रुओं को मारकर मांसभक्षी पशुपक्षियों को तृप्तकर दिया। हाथियों के दांत और हड्डियें पहाड़ों में बेशुमार बिखरी पड़ी हैं॥ ॥

घृणायुक्त हाड़ मांसादि का वर्णन होने से यहां वीभत्सरस है।

भयानकरस——

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। इस रस के आश्रयपात्र स्त्री व नीच पुरुष होते हैं। जिससे भय उत्पन्न होता है वही इस रस में आलम्बन है। उसकी चेष्टाएं उद्दीपन मानी जाती हैं। विवर्णता, गद्‌गद् भाषण, प्रलय (मूर्छा), स्वेद

रोमांच, कम्प और इधर उधर ताकना आदि इसके अनुभाव हैं। जुगुप्सा आवेश, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम तथा मृत्यु आदि इस रस के संचारी भाव हैं।

*** गीत—छोटो सांणोर ***

[मानदानजी लालस कृत]

पूजन कर गवर तणा पग पूजै, जग अरियां सह धिया जपै ॥
ज्यां सिर वैरी मान उछजियौ, ओ गिरजा मत पिया अपै ॥ १ ॥

सगती! वचन सचा सुण लीजै, अरज मनीजै गवर! इती ॥
खळ ज्यां सीस विजाहर खीजै, वर मत दीजे बीसहथी ॥ २ ॥

झाट खगां जिण सूं कुण झालै, दुयण उथाळै गवण दहै ॥
सुत गुमनेस जिकां उर सालै, किम हालै घरवास कहै ॥ ३ ॥

चौकस आस किसी चुड़ले री, कहो री! अवै सुहाग किसो ॥
देवी! इसो भरतार न दे री, ज्यां सिर वैरी मान जिसो ॥ ४ ॥

भावार्थ—महाराजा मानसिंहजी के पराक्रम से भयभीत शत्रु राजाओं की कन्याएं गौरी की पूजा करती हुई प्रार्थना कर रही हैं—हे गिरिजे! जिसके सिर पर महाराजा मानसिंह जैसा शत्रु है, उसे हमारा पति मत बनाना ॥ १ ॥

हे आद्य-शक्ति! हमारे ये सत्य वचन सुन लेना। हे बीस-भुजाधारण करने वाली गौरी! हमारी इतनी सी प्रार्थना स्वीकार कर लेना कि जिसका शत्रु महाराजा विजयसिंह का पौत्र मानसिंह है, उसे हमारा पति मत बनाना ॥ २ ॥

उसकी कराल कृपाण के वार कौन सहेगा? वह घर से निकल कर शत्रुओं को मारडालता है। गुमानसिंह का पुत्र जिसके हृदय में शल्य हो रहा है, उसके साथ घरवास कैसे निभ सकता है? ॥ ३ ॥

जिसका शत्रु महाराजा मानसिंह है उसके साथ पाणि-ग्रहण करने से हमारे सौभाग्य की आशा ही क्या है? चूड़ा रह भी कैसे सकता है? हे देवी! ऐसा पति मत देना जिसके सिर पर महाराजा मानसिंह जैसा शत्रु हो ॥ ४ ॥

यहां महाराजा मानसिंह के पराक्रम का भय ही स्थायी भाव है। महाराजा मानसिंह ही आलंबन विभाव है। महाराजा मानसिंह की चेष्टाएं ही उद्दीपन विभाव हैं। शत्रु कन्याओं का महाराजा मानसिंह के पराक्रम के भय से कंपायमान होना, भय निवारणार्थ गद्गद् होकर देवी की प्रार्थना करना अनुभाव हैं। इसीप्रकार त्रास, मोहादि संचारी भाव हैं।

अद्भुतरस—

अद्भुतरस का स्थायीभाव विस्मय और अलौकिक वस्तु है। कार्य इसका आलंबन है। उसके गुणों का वर्णन उद्दीपन है। स्तम्भन, स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, सम्भ्रम और नेत्र विकासादि इसके अनुभाव हैं। वितर्क, भ्रांति, हर्षादि इसके व्यभिचारी (संचारी) भाव हैं।

उदाहरण:—

* गीत-छोटो सांणोर *

पड़ियो नह धरण न भखियो पंखी,
कपाड़े न जळायौ आग ॥
अरजण-गौड़ तणो तन आखौ,
लड़तां गयो लोहड़ां लाग ॥ १ ॥

खित पड़ियो न पळचरां खाधो,
पावक घट सकियो न प्रजाळ ॥
वीठळ-सुतण तणों तन वढतां,
त्रिजड़ां चहोट गयो रणताळ ॥ २ ॥

गिरियौ धरा न विहंगै ग्रसियों,
दावानळ नह पंजर दह्यो ॥
पाल-हरो असुरां पाड़तो,
रज रज धारां विलग रह्यो ॥ ३ ॥

थळ, पळचर, सुरमुख, अपछर, हर,
जोवो किण वासते जग ॥
वाय-हंस अमरापुर वसियो,
खाधो घट हूँ कह्यो खग ॥ ४ ॥

भावार्थ—अर्जुन गौड़ के युद्ध और उसके वीरगति प्राप्त करने का वर्णन है। अर्जुन गौड़ का शरीर न भूमि पर गिरा, न मांसभक्षी पक्षियों ने ही खाया, न आग ने उसको जलाया। युद्ध करते २ वह तलवार के ही लग गया ॥ १ ॥

वीठल के पुत्र का शरीर, न जमीन पर गिरा, न पलचर पक्षियों ने ही खाया, न आग ही उसको जला सकी। कटते २ उसका सारा शरीर तलवार के ही लगा रह गया ॥ २ ॥

वह न पृथ्वी पर गिरा, न विहंगों ने खाया, न दावानल ने उसका शरीर जलाया। प्रतापसिंह का पौत्र शत्रुदल का संहार करते २ ही तलवारों के ही लगा रह गया ॥ ३ ॥

अंत में तलवार कह रही है—हे पक्षियो! हे अग्नि! हे अप्सराओ! और हे महादेव! तुम लोग इस रणाध्वर में क्या देख रहे हो? उस वीर का प्राणवायु तो स्वर्ग-लोक चला गया और सारे शरीर को मैं खा गई ॥ ४ ॥

इस गीत में पक्षियों, महादेव और अग्न्यादि का विस्मय स्थायी भाव है। युद्ध आलंबन विभाव है। युद्ध में शत्रुदल का संहार पराक्रम द्वारा किया जाना उद्दीपन विभाव है। ऐसी महिमा का वर्णन अनुभाव है। इस वर्णन से अनुमोदित हर्षादि संचारी भाव हैं। पद्य कितना अनूठा है। इन सब के द्वारा अद्‌भुतरस प्रकट होरहा है।

शान्तरस—

शान्तरस का स्थायीभाव शम, आश्रय और उत्तम पात्र है। अनित्यत्व, दुःखमयत्व आदि से सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप इस रस में आलम्बन होते हैं। ऋषि आदिकों के पवित्र स्थान, पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्तवास तथा महात्माओं का संगादि उद्दीपन विभाव माने गए हैं। रोमांचादि इसके अनुभाव हैं। निर्वेद हर्ष, स्मरण, प्राणियों पर दयादि इस रस के संचारी भाव हैं। इन डिंगल गीतों में शान्तरस का साम्राज्य इतना प्रबल है कि जिसके बारे में कुछ भी लिखा नहीं जा सकता।

यहां पर पाठकों को शांतरस का आस्वादन कराने के निमित्त दो गीत रखते हैं। यथा—

*** गीत छोटो सावभड़ो ***

[बक्सीरामजी कृत]

थावी केतली नूर उमर थारी, भाखै मुख असहा वच भारी।
वचसो नहीं आवियाँ वारी, गावो रे गावो गिरधारी ॥ १ ॥
बांटो वित्त आंपणै वारै, लाछ नहीं हालैली लारै।
थिर ऐ दिन रहसी नह थारै, तू नर ईसर क्यूं न चितारै ॥ २ ॥
यूं तरतर पड़ता दिन आसी, जीहा, कर, पद, चख थक जासी।
पाकड़ जम घातैला पासी, पापी इण दिन ने पछतासी ॥ ३ ॥
वप माया ने जांण विरांणी, पांव न धर खोटी दिस प्रांणी।
रघुवर साचो दास रसांणी, बोल बकसिया अम्रत वांणी ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य! तेरी आयु ही कितनी है? जो तू असह्य और कटु वचन कह रहा है। तेरा समय जब आयगा तब तू बच नहीं सकेगा। हे मनुष्य! परम पिता परमात्मा गिरधारी का तू भजन कर ॥ १ ॥

अपनी शक्ति के अनुसार धन का दान कर। यह लक्ष्मी तेरे साथ नहीं जाएगी। यहां की यहां ही धरी रहजायगी। ये दिन भी चिरस्थायी न रह सकेंगे। हे मनुष्य! तू ईश्वर का स्मरण क्यों नहीं करता है॥ २॥

जल्दी २ तेरी आयु के दिन व्यतीत हो जायँगे। जीभ, हाथ, पांव और आंखादि इन्द्रियां थकित हो जायँगीं। यमराज पकड़ कर फांसी पर लटका देगा। हे पापी प्राणी! उस दिन तू खूब पछतावेगा॥ ३॥

हे प्राणी! इस नश्वर शरीर और माया को पराई समझ, बुरे रास्ते की तर्फ चरण मत रख। रघुवर सच्चा है। बख्तीराम कवि कहता है कि राम नाम की अमृत वाणी बोल॥ ४॥

* गीत—जांगड़ो सांणोर *

[ओपा आढा कृत]

जोवन कारमो रे विहांणे उड़ जासी,
आदर भजन तणो अभ्यास॥
प्राणी कदे न आय प्रामणा,
वळै न बीजै वागड़ वास॥ १॥

होय सनाथ जनम मत हारय।
नाथ सुमर सतलोक-नरेस॥
नाम लेख जोयां नह मिळसी।
बीस कोड़ देतां लघ वेस॥ २॥

सूनो गांम न फाड़ै साड़ो।
गाफल हिवड़ै राख गिनान॥
"ओपा" ऐ दिन कदे आवसी।
भजसी वळै कदे भगवान॥ ३॥

फरसराम भज चख इमरत फळ।
जनम सफळ हुयजासी॥
पाछो वळै अमोलक पंछी।
इण तरवर कद आसी॥ ४॥

भावार्थ—कवि उपदेशपूर्ण वाक्यों में कहरहा है। यह तेरी जवानी व्यर्थ है, शीघ्र ही चलीजायगी। तू ईश्वर के भजन का अभ्यास क्यों नहीं करता है। हे प्राणी इस असार संसार में फिर कभी तू अतिथि होकर भी नहीं आयेगा॥१॥

तुझे मनुष्ययोनि में जन्म मिला है, तू अपनी आयु को व्यर्थ मत गुमा। तू करोड़ों रुपये भी खर्च कर देगा तो भी तुझे तेरी यह अवस्था पुनः प्राप्त नहीं हो सकेगी। तू ईश्वर के भजन करने का अभ्यास कर ॥ २ ॥

तू संसार कर्मों में व्यर्थ बंध रहा है। इसप्रकार विना आवाज़ नगर में पुकार करने से कौन सुनेगा? हे मूर्ख! तू जरा बुद्धि को अपने हृदय में स्थान दे। ओपा आढा कवि कह रहा है कि तेरी यह अवस्था फिर कभी नहीं आएगी। तू ईश्वर का भजन कब करेगा ॥ ३ ॥

परमपिता परमात्मा का भजन कर। यही अमृत फल है। भजन रूपी अमृत फल के रस का आस्वादन कर। हे मनुष्य रूपी पक्षी! तू फिर इस संसार रूपी वृक्ष पर बैठ कर भजन रूपी अमृत फल को कभी नहीं खा सकेगा। समय व्यर्थ मत गुमा ॥ ४ ॥

म्हनैं जितो प्रेम म्हारी देस-भाषा इटालियन सूं है, उण करतां इधको मारवाड़ी सूं है। उणमें बल और तेज है और वोहलै परवार री तथा मीठी है।

एल. पी. टैसीटोरी।

राजस्थान ने अपने रक्त से जिस साहित्य का निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता······उसका प्रकाशन देश के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ।

हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य का निर्माण करने में मारवाड़ी भाषा का व्यक्त और अव्यक्त रूप से प्रमुख हाथ रहा है। इसके छिपे हुये अनन्त कोष (Treasure=निधि) को बाहिर निकालने का साधन उस साहित्य का कोष (Encyclopædia) है।

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

राजस्थानी दूहा

[लेखक—लक्ष्मीकुमारी चूंडावत]

[डिंगल-साहित्य में दोहे और सोरठों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छोटा रूप होने से ये सहज में कण्ठस्थ हो जाते हैं, अतः इनका प्रचार सर्वसाधारण में अधिक है। इनकी संख्या लाखों में है, किन्तु संग्रहीत न होने के कारण आये दिन घट रहे हैं। अतएव इधर उधर बिखरे हुओं को बटोरने का प्रयत्न कर रही हूं। किसनिया, केळिया, छोटिया, जेठवा, द्रौपदी, नागजी, नाथिया, नोपला, भेरिया, मोतिया, वींझरा, सोरठिया, और सगतिया आदि के सौराष्ट्री दोहों के साथ आवजी, जलाल, भोज, सजणा सवाई, सोरठ, और हीरां, आदि की 'वातों' से सम्बन्धित दोहे सोरठों का कुछ संकलन कर सकी हूं जिनमें से १३।१२ व्यक्तियों के नीति विषयक कुछ सौराष्ट्री-दोहे पाठकों के सम्मुख रख रही हूँ। 'राजिया के सोरठे'* नामक एक छोटी पुस्तक जगदीशसिंहजी गहलोत ने भी प्रकाशित की है।]

पट दै सांवण[1] पूर, खूंब[2] चढाय सोधन[3] करो।
धोयाँ हुवै न दूर, काळो[4] लागाँ किसनिया॥ १॥
हियो ज होवै हाथ, कुसंगी केता मिळो।
चनण भुजंगां[5] साथ, काळो लगे न किसनिया॥ २॥

---

* ऐसे दोहे-सोरठों की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। स्वामी नरोत्तमदासजी द्वारा सम्पादित 'राजस्थान-रा दूहा' पहला भाग और 'राजिया रा सोरठा' बहुत समय हुआ प्रकाशित हो चुके हैं। 'राजस्थान-रा दूहा' जिसमें कोई ७० व्यक्तियों की कृतियों का संकलन है। इसमें व्यक्ति और स्थान-विशेषों के अतिरिक्त कोई १६४ विविध विषयों पर भावार्थ सहित १२२७ दोहों का समावेश है। इस नोट के लेखक के पास भी कोई ३०-४० कवियों के दोहे-सोरठों का संग्रह किया हुआ है।—स० सम्पादक।

(१) साबुन (२) धोबी की भट्टी (३) साफ (४) कलंक (५) सर्प

आवे वसत[६] अनेक, हद नाणो[७] गांठे[८] हुवे ।
अकल न आवे एक, क्रोड़ों रुपिया[९] किसनिया ॥ ३ ॥
पिरथी सह पैमाल[१०], पल मांहि करदे परी ।
सीह हुवा है सियाल, कामण आगे केलिया ॥ ४ ॥
सिंघां के सिर सार, अति[११] जस करवावे अवस[१२] ।
तावां पर तरवार, काढ्यां लाणत[१३] केलिया ॥ ५ ॥
जाण न बीछू जाप, आणै नर मन ही अंजस[१४] ।
सो नर कालो सांप, कर[१५] क्यं घालै[१६] केलिया ॥ ६ ॥
गोरयां[१७] आगल[१८] गीत, नारी मुख गावे सदा ।
रजवाड़ां री रीत, के[१९] जाणै तूं केलिया ॥ ७ ॥
नग[२०] कण जड़िया कोट, सुवण[२१] लंका सोहणी[२२] ।
पलै[२३] ज रावण पोट[२४], केहीं[२५] लेग्यो केलिया ॥ ८ ॥
लांबा तिलक लगाय, फटक[२६] धजा[२७] उड़ती फिरे ।
खोटो दाणो[२८] खाय, कीयाँ[२९] तिरसी[३०] केलिया ॥ ९ ॥
पिरथी[३१] में पंपाल[३२], पाखंड रा दुनिया पढै ।
कँवले[३३] ऊभो[३४] काल, छिड़की मारै छोटिया ॥ १० ॥
सपना सो संसार, जाणै पण भूलै जगत ।
आणै गरव[३५] अपार, छिन भर में नर छोटिया ॥ ११ ॥

---

(६) वस्तु (७) रुपया पैसा (८) पास में (९) रुपये (१०) नाश (११) बहुत (१२) अवश्य (१३) लाञ्छन (१४) घमंड (१५) हाथ (१६) डालता है (१७) गणगोर (१८) आगे (१९) क्या (२०) रत्न (२१) सुवर्ण (२२) सुहावनी (२३) पल्ले (२४) गांठ (२५) क्या (२६) फटकती हुई (२७) ध्वजा (२८) अन्न (२९) कैसे (३०) तिरेंगे (३१) पृथ्वी (३२) जगद्जाल (३३) द्वार के कोने में (३४) खड़ा (३५) गर्व

खारो लागे खेल, बूढ़ा ने बालक तणो ।
मुवां न होसी मेल, दांई विखुटा[1] दादुवा ।। १२ ।।

दिया किरोड़ां[2] दाम, चित्तोड़ो चलियो नहीं ।
बांध्यो बाला गाम[3], दिल हमीणो दादुवा ।। १३ ।।

सब सूं बुरो सुनार, बाण्यो उणसूं ही बुरो ।
दरजी दानतदार[4], दीठो[5] कोय न दानिया ।। १४ ।।

पाखंडी अणपार[6], घर घर धन लूटे घणा ।
स्वारथ बिन संसार, दीठो न साधु दानिया ।। १५ ।।

संपत में संसार, हर कोई हेतू[7] हुवै ।
विपत पड़्यां री वार, नैण न जोवे नाथिया ।। १६ ।।

धोबो[8] मूठी धान, माँगे वाँने ना मिले ।
पट काढ़ै पकवान, ना ना करतां नाथिया ।। १७ ।।

चेरी[9] चंचल जात, पदमण सी दीसै प्रगट ।
बाँदी[10] सूँ दो वात, निपट न कीजे नाथिया ।। १८ ।।

कदे न भाजै[11] काय, आंबा[12] री तिस[13] आमल्यां[14] ।
छोकरियां घर छाय, नार[15] न आणै नाथिया ।। १९ ।।

खड़ग धार पर कांह[16], चालै तो चलवो सहल[17] ।
मुसकल जग रै मांह, नेह निभावण नागजी ।। २० ।।

पूरां जल पोछाह, सागर जेता सारखा[18] ।
ऊफल[19] के ओछाह[20], नाडा[21] भरिया नागजी ।। २१ ।।

---

(१) बिछुड़े हुए (२) करोड़ों (३) ग्राम (४) इमानदार (५) देखा (६) अपार (७) हितू (८) दोनों हाथों की सम्मिलित अंजलि (९) दासी (१०) दासी (११) मिटती है (१२) आम (१३) प्यास (१४) इमली (१५) स्त्री (१६) कोई (१७) आसान (१८) सरीखे (१९) किनारों के ऊपर होकर बह जाने वाले (२०) छोटे (२१) तलैया

जोड़ै ज्यूं ही जोड़, बणजारा रा बैल ज्यूं ।
तनक[1] जोड़ मत तोड़, नातो[2] तांतो[3] नागजी ॥ २२ ॥

बतलावे जद बाम[4], बतलायां बोले नहीं ।
कदेक[5] पड़सी काम, नोरा[6] करस्यो नागजी ॥ २३ ॥

चित्त में आवे चीत[7], जित तित[8] ही देखूं जरां ।
मन लागो सो मीत, न्यारा होवै नागजी ॥ २४ ॥

चलतां हलतां[9] चीत, सूतां बैठां सारखी[10] ।
पड़ै न जूनी[11] प्रीत, नैण लग्योड़ी नागजी ॥ २५ ॥

माणै घररी मीत, नैणां जासूँ नीवड़ै ।
लागै आछा नीत, नेह पराया नागजी ॥ २६ ॥

ठकराणी री ठीक, ठाकर की ठक ठक करै ।
वलु वलु नावे नजीक, नार चुकावे नोपला ॥ २७ ॥

महिपत[12] देता मौज[13], घर बैठां घोड़ा घणा ।
रोटयां केरो[14] रोज[15], निजरां देख्यो नोपला ॥ २८ ॥

भायां घालै आंत[16], अजर[17] दाणो जारण[18] करै ।
खरियल[19] कर घण ख्याल, नर खावे रे नोपला ॥ २९ ॥

तुलै न परबत तोल, मोल नहीं मूरख तणों ।
बड़ै मिनख रा बोल, नग[20] नग भारी नोपला ॥ ३० ॥

---

(१) थोड़ा (२) सम्बन्ध (३) धागा (४) स्त्री (५) कभी (६) खुशामद (७) याद (८) जहाँ कहीं (९) चलते फिरते (१०) एकसी (११) पुरानी (१२) राजा (१३) आनन्द से (१४) का (१५) रोना (१६) विरोध, भ्रान्ति (१७) न पचने लायक (१८) पचाते हैं (१९) खरी कमाई का खानेवाला (२०) रजकण ।

काया अमर न कोय, थिर[१] माया थोड़ी रहै ।
इल[२] में वातां[३] दोय, नामां कामां नोपला ॥ ३१ ॥

नैणां वरसै नीर, जिहां सनेही सांभरे[४] ।
धरिये क्यूंकर धीर, फिरूँ उदासी फारवस ॥ ३२ ॥

ऊँचो घणो अवास[५], अलगे सूँ दीसे अजब ।
घरणी विन घरवास, फीको लागे फूसिया ॥ ३३ ॥

मतलब रा पाजीह[६], कर जोड़्यां विनती करै ।
बिन मतलब राजीह, बोलै नहिं वे बापजी ॥ ३४ ॥

आसी सावण मास, वरखारुत[७] आसी वलै ।
सांईनों रो साथ, वले[८] न आसी वींझरा ॥ ३५ ॥

सुक पिक लगै सवाद[९], भल थोड़ो ही भाखणों ।
वृथा करै बकवाद, भेक[१०] लवै[११] ज्यूं मेरिया ॥ ३६ ॥

सब जग इये[१२] सराह, वासो नह आवै वलै ।
जोबन एक जराह[१३], वार[१४] न आवै वींझरा ॥ ३७ ॥

दुख घोड़ा थोड़ाह, वराया मानवी मात्र ने ।
अथी[१५] अधकेराह[१६], आण भराणा[१७] वींझरा ॥ ३८ ॥

दूहा दुकड़ा-दाम, जोड़या जेही जोड़सी ।
ब्यावर[१८] तणा[१९] विराम[२०], बांझ न जाणे वींझरा ॥ ३९ ॥

---

(१) स्थिर (२) संसार (३) बातें (४) नाम और कार्य (५) मकान (६) पाजी, बदमाश (७) वर्षा ऋतु (८) फिर (९) रुचिकर, मधुर (१०) मेंढक (११) बकना (१२) इस सराय (१३) वृद्धावस्था (१४) फिर, पुनः (१५) इससे भी (१६) अधिक (१७) पूर्ण भर गये (१८) जननेन्द्रिय (१९) का (२०) कष्ट ।

सोरठ तूँ सुर नार, सिर सोने रो बेहड़ो[1] ।
पग-थामो[2] पिणियार, वातां बुझै वींझरा ॥ ४० ॥

सहिया[3] सो सहसीह, अणसहिया[4] होसी अलग ।
सामहिया[5] उठसीह, भार पड़्यां घर मेरिया ॥ ४१ ॥

विलसे दरब विलोल[6], हरामखोर जो नर हुवै ।
पावै जम-री-पोल[7], भूर-दक्षिणा[8] मेरिया ॥ ४२ ॥

मोताहल[9] मुकताह, पहर्यां मेल ज नह पड़े ।
गज री भूल गधाह, भूँडी लागे मेरिया ॥ ४३ ॥

होला[10] नित्त हजार, चुगलखोर झूठी चवै[11] ।
पांच लाख पैजार[12], भ्रकुटी[13] माथे मेरिया ॥ ४४ ॥

---

(१) घड़े पर उठाया जानेवाला छोटा घड़ा (२) खड़ी रहो (३) जिसने सहन किया है (४) सहन नहीं कर सकने वाले (५) विरोधी (६, ऐशा आराम (७) नरक (८) भूरसी-दक्षिणा= दंड (९) मोतियों की माला (१०) गप्पें (११) कहते हैं (१२) जूते (१३) सिर ।

काती-री का'णिया

[संग्रहकर्त्ता—रामनारायण माथुर बी० अे०]

[भारतीय लोक-साहित्य का अेक महत्त्वपूर्ण अंग व्रत-कथाअें हैं। जनता के सामान्य जीवन पर इनसे अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे कार्त्तिक-स्नान के व्रत से संबंध रखनेवाली तीन कथाअें दी जाती हैं। हिन्दुओं में कार्त्तिक का महीना बड़ा पवित्र समझा जाता है। अनेक महत्त्वपूर्ण भारतीय पर्व इसी महीने में पड़ते हैं। स्त्रियां प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व स्नान करती हैं जिसे 'काती नहाना' कहा जाता है। स्नान के पश्चात् वे देव-दर्शनादि करती हैं और फिर अेकत्र होकर कार्तिक-स्नान की कहानियां सुनती हैं। उन्हीं में से कोई अेक जनी कहानियां कहती है। प्रतिदिन कम से कम पांच कहानियां कही और सुनी जाती हैं। आरंभ में प्रतिदिन नयी कहानियां कही जाती रही होंगी पर अब नयी पीढ़ी की स्त्रियों को बहुत कम कहानियां याद रह गयी हैं फलतः अधिकांश में कही हुई कहानियां ही दुबारा तिबारा कही जाती हैं फिर भी मुख्य कहानी यथासंभव प्रतिदिन नयी होती है।

ये कहानियां श्रीयुत रामनारायण माथुर के संग्रह से ली गयी हैं। आप बहुत दिनों से राजस्थानी-व्रत-कथाओं के संग्रह में लगे हुअे हैं। केवल कार्तिक स्नान संबंधी ५० से ऊपर कहानियां आप संग्रहीत कर चुके हैं। ये कहानियां विविध स्थानों की स्त्रियों से सुन कर लिखी गयी हैं। स्त्रियों ने स्वयं लिख कर भी कुछ कहानियां उन्हें भेजी हैं। कहानियों की भाषा अजमेर की ओर की है। उसे ज्यों की त्यों रहने दिया गया है।] —संपादक

१

रामबाई और राजबाई की का'णी

अेक हा रामबाई और अेक हा राजबाई । वै दोनूं जणयां काती न्हावत्यां ही । रामबाई तो रामजी का नांव की काती न्हावता और राजबाई राजाजी के नांव की। जद काती पूरी हुयी तो राजबाई राजाजी नै कैवायो कै मैं थां का नांव की काती न्हायी है। राजाजी आ सुण'र बडा राजी हुया और अेक पेठा मैं रुपिया और मोगरां भर अर राजबाई के आठै पुगा दी। राजबाई ऊं पेठा नै देख्यो तो बडी गुस्सै हुयी कै देखो मैं तो महीना भर तक राजाजी का नांव की काती न्हायी और राजाजी बदला मैं ओ दो टकां को पेठो भेज्यो है। वा गुस्सा मैं होर ऊंनै अेक मालण नै दो टकां मैं वेचयाई।

उठीनै रामबाई कयो कै मैं रामजी का नांव की काती न्हायी हूं जो कम सैं कम पांच बामण तो जिमा दूं। आ सोच'र आ मालण के घरां गयी तो मालण के कनै ऊ ही पेठो पड्यो हो। मालण बोली कै मैं ओ पेठो दो टकां मैं लियो हूं तूं चावै तो चार टकां मैं लेज्या। रामबाई ऊं पेठा नै ले लियो। घरां जा'र ऊंनै वनारयो तो ऊंमै सूं रुपिया और मोगरां निकली। रामबाई बडा राजी हुया और बोल्या कै मनै तो रामजी तूठ्या है। फेर सारी नगरी में नूंतो फेरा दियो कै सगला बामण रामबाई के जीमवा आयीजो। सगला बामण रामबाई के जीमवा गया और जीम जीम' र पाछा जावता 'रामबाई की जै'–रामबाई की जै' बोलता गया।

राजाजी तखत बिछायां बैठा हा। जद वै बामणों की 'रामबाई की जै'की धुन सुणी तो बोल्या कै भाई! राजबाई की जै बोलो, रामबाई की जै क्यूं? तो सारा बामण बोल्या कै म्हे तो सारा जणा रामबाई के जीम'र आया हां जी-सैं रामबाई की जै बोलां हां, राजबाई की जै क्यूं बोलां?

राजाजी राजबाई नै बुला'र पूछियो कै म्हे थांनै अेक पेठो भेज्यो हो बींको थे कांई कर्यो। तो वा साफ-साफ कै दियो कै मैं तो दो टकां मैं वेच दियो। राजाजी बोल्या कै बीं मैं म्हे रुपिया और मोगरा भर अर भेजी ही पण थांके लिखी नहीं ही।

जद पछै राजाजी सारी नगरी मैं ढूंडी पिटा दी कै कोई काती न्हावै तो रामजी का नांवकी न्हायीजो और राजाजी का नांव की मती न्हायीजो।

२

सूरज भगवान की का'णी

सूरज भगवान हा जिको कीड़ी नै कण देवै और हाथी नै मण देवै। अेक दिन व्यांकी धणियाणी राणादेजी कयो कै म्हाराज ! आप जीमबानै मोड़ा आवो। जद सूरज भगवान कयो कै म्हे सारी सृष्टी नै पूर करां जद आवां। जद राणादेजी पूछियो कै कींनैई नहीं भूलो ? तो बोल्या कै नहीं, म्हे तो कींनैई नहीं भूलां।

अेक दिन राणादेजी अेक कीड़ीनै लेअर अेक डब्बी में बंद कर दी। जद सूरज भगवान आया तो राणादेजी कयो कै म्हाराज ! सबनै पूर दियो ? सूरज भगवान बोल्या-हां राणादेजी ! सबनै पूर दियो। राणादेजी फेर पूछ्यो कींनैई नहीं भूल्या ? बै कयो-कींनैई नहीं भूल्या, अब राणादेजी ! थे थाल पुरसो। जद राणादेजी बोल्या कै म्हाराज ! हाल म्हारो जिनावर भूखो बैठो है। भगवान कयो कै आछो, राणादेजी ! थांका जिनावर नै पैली पूरां पछै म्हे जीमां। जद राणादेजी कयो कै म्हाराज ! ऊं डब्बी में कीड़ी है बींनै आप ल्यावो। जद भगवान कयो कै राणादेजी ! थेई ल्यावो।

जद राणादेजी जा-अर ऊं डब्बी नै ल्याया। खोल-अर देखै तो डब्बी में बांकी टींकी को अेक चावल पड्यो है और वा कीड़ी ऊं चावल कै गोल-गोल चक्कर लगावै नै चुगै। जद सूरज भगवान कयो कै देखो, राणादेजी ! कीड़ी नै कण अर हाथी नै मण देवां, सारी सृष्टी नै पूर नै पछै म्हे जीमां। जद राणादेजी कयो कै म्हाराज आप साचा।

हे सूरज भगवान ! भूखा उठाणजे पर भूखा सुवाणजे मत।

३

तिलक म्हाराज की का'णी

अेक बूढ़ी बामणी ही। ऊंकै अेक बेटो हो। बो आपकी मा कनै-सैं रोज दिनूंगा रोटी मांगतो। जद डोकरी कैती कै बेटा! तूं कीं नेम ले'लै, नेम पूरो कर्‌यां बिना रोटी नहीं खावणी। जद बो कयो मा कांई नेम लेऊं। जद डोकरी कयो कै बेटा! रोज तिलक म्हाराज का दरसण कर्‌या कर और पछै रोटी खाया कर।

अबै बो रोज दिनूंगा तिलक म्हाराज का दरसण कर अर रोटी खावतो। अेक दिन ऊंनै तिलक म्हाराज का दरसण कोनी हुया तो बो कयो मा आज तो तिलक म्हाराज का दरसण कोनी हुया और मनै तो जोर की भूख लाग री है। मा कयो बेटा! दरसण कर्‌यां बिगर रोटी नहीं खाणी चाहीजै।

जद बो दरसण करवा नै जांवतो-जांवतो जंगल में पूंच गयो। उठै ऊंनै चार चोर दीख्या जका चोरी का माल को बंटवाड़ो कर रिया हा। बां मांय सैं अेक कै तिलक लाग रियो हो। तिलक देखतां ही बो खुसीरो मार्‌यो चिल्लायो—दीखग्यो! दीख ग्यो! दीख ग्यो!

चोर समज्या कै ओ म्हांनै देख लिया है जिण वासतै बोलै है। कठेई पकड़ा नहीं देवै। सो बोल्या अरे! चिल्ला तो मत, अठीनै आव। जद बो बां कनै गयो। जद चोरां चार की बजाय पांच पांती करी और अेक पांती ऊंनै दे'र बोल्या कै लै, थारी मा नै दे दीजै।

बो गांठ लेजा'र आपकी मा नै दी तो मा कयो कै बेटा! ओ कांई लायो। बेटो बोल्यो कै मनै तो ठीक कोनी, तिलक म्हाराज दी है, तूं पछै देखबो करजे, मनै तो जोर की भूख लाग री है, पैली रोटी दे दे। मा बेटानै रोटी दे'र गांठ खोली तो ऊंमैं ऊंनै अन, धन, लाव लछमी, च्यारूं पदारथ मिल्या। अब ऊंकै खूब धन-माल हुग्यो। जद मा कयो कै बेटा आदमी नै कोई नेम जरूर लेणो।

हे तिलक म्हाराज! ऊ छोरा नै तूठ्या जिसा सकल नै ही तूठज्यो, आधी की पूरी करज्यो और पूरी नै परवाण चढायीज्यो।

अर्वाचीन राजस्थानी साहित्य

रामलो भंगी

[लेखक—मुरलीधर व्यास 'विशारद' एफ. एस. आर. आई., बीकानेर]

जागा-जागा फाटोड़ो मैलो-कुच'र ढीलो-ढालो चोळो; माथे लीरा लटकतो दमालो अर पगां में दो मेळ रा खाँसड़ा[1] पहर्‌यां रामूड़ो भंगी व्हपड़ो सीयाळे री ५ बजी सामी[2] ठंडी-हेल चाले जणै[3] म्हारी गळी में आँवतो। वो हाथ में एक छाजळी, बगल में बांसों री सीक्यों रो लम्बो झाड़ू अर खूंजे में टूटोड़ी चिलमड़ी राखतो। गळी मांय सूं फूस-फाँड़ो चुग'र वैने बाळ'र पैला थोड़ो सेक करतो। ईये खूणे सूं वै खूणे तांई सगळी गळी बुहारतो। इणी तरह एक रै बाद बीजी गळी झाड़तो, वैरी[4] विरत बड़ी ही। सूंधारे[5] थके वैरी बहू फाटो सो घाघरियो पहर्‌यां अर पूर-पूर ओढ़णो ओढ्यां आगे-आगे गधी ने टोरियां जाती अर आपरै धणी ने जाजरू झड़ावण में मदद देंवती। रामलो गळी रो भंगी हो।

लोग जद सी रै मारिया सीरख मांय सूं मूंडो ही को काढता हा नीं तद बिचारो रामलो काम में जुटतो हो। हाथ सूं काम करतो अर मूंडे सूं मीठी राग में ठाकुरजी रा भजन गाँवतो। रामलो भगत हो।

सूरजनारायण जद ऊपर चढ़ता अर गळी में खासो तावड़ो आय जाँवतो जणै टाबर-टूबर तावड़ो लेवणनै नीसरता। रामूड़े रो छोरो ई तावड़े में एक पसवाड़े ऊभो होतो जद छोरा वैने कांकरा मारता अर कैता 'आवो वळ भंगीड़ा, भींट लेसी!' छोरो कैतो- 'मां बाप! हूं तो घणो आघो ऊभो हूं।' जणै छोरा चिढ'र कैता—साळा! थारी छाया पड़ै है नी? वळ आघड़ोई। रामूड़ो सुणतो जद उल्टो आपरै छोरै ने तड़कतो अर बीजे पासी जाय'र खड़ो रैणे रो कैतो। गळी रै टाबरों ने कैंतो "हुकम कंवर साब रो, धणया रो महादेव।" रामूड़ो इसी जरणा[6]-वाळो हो।

काम पूरो कर'र रामलो घर घर सूं एक-एक रोटी मांगतो। ठंडी-ठरी रोट्यां अर बासणो-कूसणो साग-दाळ सूं रामले री ओडो भर जाँवती। कोई घरवा[ळो] रोटी नहीं देतो तो रामलो कीं नहीं कैतो। रामलो संतोखी हो।

---

१. फटे जूते। २. सामने ३. जब ४. उसकी ५. सूर्योदयसे पूर्व ६. सहनशीलता

गळी में सवाड़ पिछियार रौ काम पड़तो तौ रामूड़ो महीने-मास तांई मैलो उठांवतो जिके री बदळी में बिंयेने एक रुपियो रोकड़ी, कुंई धान अर सवाड़ रा मैला गिन्दा कपड़ा मिळता। बीजो स्वाड़ री नेग ई मिळतो हौ।

उतरियोड़ा मैला फाटा कपड़ा, वे भी कई वार हाथाजोड़ी करणे पर बिंयेनै खोग दिया करता हा। रोगी रोग सूं आछा होता जणां बीमारी रा गाभा वैनै फैंक देता। इण तरै रामले रै परवार रै पहरणा-ओढ़णा री तेवड़ होती ही।

गळी में कोई गाय-ढांढो कुत्तो-बिल्लो अर चिड़ी-कबूतर मर जांवतो तो रामले री बड़ी २ पूछ होती। जित्तै मरियोड़ो जिनावर घर रै आगे सूं उठै नहीं उत्तै घरवाळा खा-पी सकै नहीं। रामलो मरियोड़ा जिनावर ने घींसतो जणां संकट मिटतो। इये संकट-मोचन रै बदळेमें वैने धान अथवा रोटी अर थोड़ा पईसड़ा मिळता। रामलो गळी री सफाई रौ सस्तो ठेकेदार हौ। वौ[७] मरियोड़े ढांढा रा खाळड़ा[८] काढ'र चौवटे में दामों री पूरी २ कस-बढ़ लगाय'र वेचतो। रामूड़ो एक हुसियार वौपारी हौ।

गळी में जीमण-जूठण होंतो तो रामलो मवड़े[९] सामो बैठो रहतो अर गाय-ढांढा अर गंडकड़ां ने काढ़तो अर कैतो 'अैंठ-जूठ मने घलावो माई-बाप।' थाळी में बंचियोड़ी अैंठ-जूठ जिकी चिंणु[१०] रै पाणी में डूबोड़ी रामले रै वास्ते नाई भेळी कर राखतो। बापड़ो सीयाळे री ठंडी रात में आधी रात तांई उडीकतो रैतो। काम-काज निवटणे पर कदेई तो वै बेळा ई कुंई नेगचारे री मिठाई देदेता। कदेई कोई 'दौड़ जा काल पुरससां' कह'र आडो जड़ लेतो। बापड़ो 'जो हुकम' कह'र रस्तो नापतो।

दूजे दिन रामलो पावड़ो कुदाळो ले'र आतो अर भठ्यां रा कोयला काढ'र वैने चोखी तरह बोरी में भर'र लेजातो अर बांरा टका खड़ा कर लेतो। रामूड़ो पूरो मजूर अर घर-लोचू[११] हौ।

भंगीड़ा रातने थकाण मिटावण अर मन बहलाण वास्ता दारू पी'र फैल करण डूकता पण वौ रामदेवजी रौ भगत हौ दारू रै सामो ई को जोतो हौ नी। रात पड़ी रामदेवजी रै मिंदर में मंडळी में बैठ'र मस्त हो'र एकतारे पर सबद गांवतो अर आपरी जिनावरां जिसी जूण नै भुला'र किणी बीजी-आलोक-भोमका में विचरतो। भंग्यांरी मंडळी में वौ 'महाराज' बजतो हौ। रामूड़ो चोखो ज्ञानी हौ।

---

७. वह। ८. चमड़ा, दरवाजा। ९. दरवाजा। १० जूठे हाथों की धोवन। ११. विवेक पूर्वक गृहस्थ चलानेवाला।

कई खोड़ीला[12] सिनख इसे सीधा-सादे सिनख सूं ई माथो लगायाँ विना को रहता हा नी। वे कैता 'अठे सफाई को करीनी—वठे को करीनी।' रासूड़ो 'लो माँ-बाप' कह'र फेर सफाई करण ढूकतो। पण खोड़ीला खोड़ थोड़ी ई छोड़े। सापड़ो ऊफत जातो। अठीने वी साफ कर'र जावे वठीने वै घूड़-फूस अर अंठ-जूठ नाख'र गिन्दगी विखेर देवे। ऊपर सूं सभोग[13] भी देवे 'काम नहीं होवे तो विरत छोड़दे थारो बाप बीजो आय जासी।' घणो उफतियोड़ो रासूड़ो कदेई रीस में जबाब देदेतो 'किणरी जाड[14] है जिको म्हारै ऊपर कर आय जावै। आवे जिके ने न्यात में रैणो है क नहीं।' रासूड़ो स्वाभिमानी हो।

---

१२. दोषदर्शी, १३. दोषारोपण, १४. मजाल।

राजस्थानी वीरों की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर-साहित्य है। संसार के साहित्यों में उसका निराला स्थान है। वर्तमान कालके भारतीय-नवयुवकों के लिये तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिये। इस प्राण-भरे साहित्य और उसकी भाषा के उद्धार का कार्य अत्यन्त आवश्यक है।

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय।

There is, however, a very rich literature in Rajasthani, mostly in Marwari.

—डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

संत सेठ श्री रामरतनजी डागा

[लेखक—मुरलीधर व्यास 'विशारद' ऐफ. एस. आर. आई. बीकानेर]

अवतारी जीवां रै भूतळ पर पधारणै सूं ईज प्राणी मात्र रौ उपगार हुवै है। पापरो पालणो जद भारी हुय जावै है तद सिस्टी नै डिगण सूं बचावण सारू इसा महापुरस जनम लेवै है। वे आपरै अलौकिक त्याग, सेवा अर प्रेमरी तिरवेणी में संसार ने सिनान कराय'र वैने ऊजळो बणाय देवै है।

'ओय म्हारो धन, ओय म्हारो परवार' जिके आठो पैर इयेनै ईं झींखता[1] रैवे है अर ईरखा'र रीस में राखसों दाईं बीजों ने रोसण री धुन में ईं लागा रैवे है। वां बापड़ों री वास्तै किसो तो धर्म अर किसो भगवान हुवै है, ऐ वांरै नैड़े कर ई नीसरे कोयनी। ऐ आपरी काळी भावनाओं सूं ईज टाबरां री रम्मत "चिलम र धूताड़ियो" दाईं 'आपरो'र परायो घर काळो कर लेवै है।

ज्ञानी अज्ञानी पिरतख में तो एक सिरसा ई दीखे है। बौवार में बिरलों ने ईं वाँरी[2] ठा पड़े है। अेकरी भावनावाँ धौळी-धप्फ हुवै अर बीजै री काळी-काजळ। पण ज्यूं ज्यूं संसार वाँरे समागम में आवे है त्यूंत्यूं पूरापूरा वाँने ओळखण[3] लागे है।

माया मायापति री है। हूं तो वैरो[4] रुखवाळो हूं। सारी सिस्टी पिरभू री एक परवार है, पछे म्हारो परवार न्यारो किसो? इसी ऊँडी अक्कलवाळा महापुरस ही प्रेम'र भाई-चारे री भावनाओं सूं संसार ने सुगंधित बणाय देवे है।

बीकानेर में भी इसाँ घणा महापुरसां जनम लियो है। वाँ[5] माँय सुं एक म्हारा पूजनीय शिवलोकवासी संत सेठ श्री रामरतनजी डागा हा।

एक वार मित्र मंडळी में महापुरसों री जीवनी पर चरचा चाल पड़ी ही। म्हैं सेठ रामरतनदासजी रै जीवणरा कई संस्मरण सुणाया। वै[6] दिन सूं म्हारा परम आदरणीय मित्र श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा, प्रसिद्ध रिसर्च-स्कालर म्हारे लारे पड़ग्या अर वांरे रोजीनारे तगादे सूं ईज आज मने संत सेठ साहब रै जीवण रा संस्मरण लिखणरो पुन लाभ हुयो है।

संत सेठ रामरतनजी रो जन्म संवत् १८९८ में बीकानेर रै प्रसिद्ध डागा परिवार में हुयो हो कै जिको परिवार आज वांरै बंशीलाल अबीरचंद रै नाम सूं बड़ो

1. रोते रहते हैं 2. उनकी 3. जानने लगते हैं 4. उसका 5. उन 6. उस

व्यापार करै है और भारतवर्ष में इणी फर्म (व्यापारिक संस्था) प्रसिद्ध है। सेठ रामरतनदासजी महादेवजी रा बड़ा भगत हा। और निरंतर इणी रै ध्यान में लीन रैता हा। वे सभाव सूं भोला-ढाला और गंभीर हा। गृहस्थी होवते थकां भी वे महान त्यागी और विरक्त हा। वे जळ-कमळ वाई संसार में रैता हा।

धन-संपत्ति नै महादेवरी समझता हा, आपरी नहीं। आपनै तो खाली[7] महादेव रा मुनीम समझता हा। वे कोई नै छोटो बड़ो नहीं समझता हा। महादेव री सिस्टी में सगळा बराबर। वे सगळां सूं प्रेम राखता हा। वांरो लोगों पर सात्विक-रौब हो अरथात लोग वांरै गुणों पर रीझ'र वांरो घणो घणो आदर करता हा। टूंके में लोग वांनै संत समझता हा।

अठीनै साल खतम हुयो। वठीनै सेठजी दुकान रै सगळां गुमास्तों'र नोकरां नै बुलाय'र डाटता 'थांरो हिसाब साफ करो। और खाते में दुकान रा थांमें इत्ता लेवणां कियां निकळे है। हिसाब साफ करलो।' प्रगट में तो इसी कड़ी धमकी देवता पण मुनीमजी नै समझा देता के जिकां रै नांवें रुपिया निकळे है वे खर्च-खाते में मांड'र खातो चोखो कर देवो। मुनीमजी रै अबोडो[8] देणे पर सेठजी कैता "बेचारे कहां से देवेंगे। घर में खाने वाले भी पूरे हैं। शंकर का पैसा वैसा कोई नहीं खा सकता। यदि हम उनको तंग करेंगे तो वे हमारे ही घर की चोरी करेंगे। उनके कोई व्यापार-धन्धा तो चलता नहीं है।" आ ही सेठ साहब रै हिरदै री महानता।

ऐके खाती च्यार बजी के सेठजी री बुलावो आयो। मुनीम गुमास्ते सूं ले'र छोटे सूं छोटो नौकर तक कोटड़ी जावणनै त्यार जावतो। जिको गैलां रकारे काम बाकी रैग्यो है वैनै सेठजी फटकार'र कैता "हमारे यहां का काम तुम से छिपा नहीं है। अगर तुम ११ बजे से ४ बजे तक काम करते तो काम शेष रह ही नहीं सकता था। मैं भूठा दिखावा नहीं चाहता" कोटड़ी पूगणे पर बिना छोटे बड़े रै भेद भाव रै सगळां री सँवार[9] बणती। सगळां नै घर री भट्टी री काढियोड़ो गुलाब रो अंतर[10] मिळतो। सेठजी आपरै हाथ सूं पाचा बणाय फर सगळां नै देता। बिना भेद भाव रै सगळां नै चोखी ठंडाई मिळती। सगळां में एक परिवार जियां बरतता।

सीयाळे में पिंडारां री चोरयां भरी रैती। जिकै किणी दुकान सूं चो उठाई ले जावे। औ सेठजी रो खळभळो[11] मुकम हो। ऐक बार ऐक नौकर पिंडारा चोर लिया। चुगलखोर चूकै थोड़ी है, सेठजी नै सुणावी दी। सेठजी रै सामनै

७. केवल ८. याचक उत्तर ९. चौर, इनायत १०. अतर ११. उदारतापूर्ण।

सिद्धि ही। के वेता जिकी हो'र रैंवती। सेठजी चिड़'र बोलिया 'महादेव का माल सबके लिये खुला है। फिर भी कोई चोरी करता है तो चोर ही बना रहेगा।' वो सिनख चोरी रे मामले में जेळ गयो अर जेळ में ई वैरी मिरतु हुई।

सेठजीरी एक खास आदत ही के आपरे खनै कुंई को राखता हानी। नित-नेम सूं आप श्री काशी-विश्वनाथजी रा दरसण करण सारूं दसोळाव तळाव जाया करता हा। अेक दिन रस्ते में अेक साधू मिळ गयो। जिके सेठजी ने रुपिया १०) रो सवाल कियो। सेठजी मुनीमजी रे नांव रुक्को लिख दियो। मुनीमजी खिड़योड़ा बैठा हा। साधूजी ने लियो लवकधक्कै। कयो "दिन ऊगोई कोयनी फकीरिया-फौज आय ढूकी। सेठजी तो घर-लुटाऊ है। तूं थारे एक दो ले'र पाधे-पुन्ने लाग!" साधू ही साचो, बोलियो "अेनैं पूरा दस १०) ई जोइजे।" मुनीमजी गरम हो'र गरजिया 'जाणे जमा[12] धर ग्यो हो। लेवे तो ले! नहीं तो सीधो लाकरी डांडी मारग पड़ियो।" साधू पाछा-पगां सेठजी खानी टुरियो[13] सेठजी दरसण कर आ ई रया हा। साधू रो मूंडो उतरयोडो अर आंख्यां रीस भरियोडी जोय'र सेठजी अग्गम ई भल लियो अर बोलिया-"नहीं दिये न? जैसे उनके बाप का माल है। माल तो शंकर का है?" आ कै'र रुक्के में १०) रे आगे अेक मींडी और बधाय दी। १००) होयग्या। सेठजी अठे ई विराजिया रैया। अठी ने मुनीमजी बळियाड़ा बैठा हा अठीनै शंकर नै तांडव-लीला करणी ही। रुक्के ने आगो बगाय'र बोलिया "रुपिया आंकों रे को लागेनी"। इयांतरै साधू ने च्यार वार फेरी फिरणी पड़ी। रुक्के रा आंक एक लाख बणगया। रौळो सुण'र आग सूं सेठजीरा बड़ा भाई श्री अमीरचंदजी पधार गया। उणां मुनीमजी ने कयो 'आज आपकी अकल भांग खागई है क्या? रतन आगया तो पूरे एक लाख ही देकर छोड़ेगा। उसके काम में विघ्न मत डाला करो।" आ कह'र वां[14] फकीर ने राजी कर'र रुपिया १०) दे दीना अर वैने समझाय दियो कै रतन पूछे तो कह दिया कै रुपिया मिळ गया। फकीर पाछो जा'र सेठ साहब ने कै दियो 'रुपिया मिळ गया।'

वियाँ-सादी रै दिनों में वे जात २ रै छुगवों मिनखों ने बुलाय'र पूछ लेंवता किसी जात में किता वियाँ है? जात पांत रो भेद भाव वांरै मन में रत्ती भी को हो नी। वाँ गरीब भायों ने मदत देणे री एक नवी ई विध बैठाई ही। छोटी छोटी लाल कोथळ्यां सिंवाय'र वाँ में जाति २ री रीत मुजब खरचे रा रुपिया घाल'र ठावा मिनखां सागे छांने-छुळके कई रै डागळे अर कई री घर री मोखी[15]

---

[12] जैसे। [13] चला [14] उन्होंने [15] नाली, मोरी

मांय सूं आंगणा में नौखाय देता। भाख-फाटी लुगायाँ वासी फूस-वारी करती जद थेली पडी देख'र समझ जाती के "आ सेठजी री तरफ सूं लाज बंचावण सारू गुप्त सहायता है"। किसीक वाँरी आंतरयां आसीस देवती होसी।

"पैसा महादेव का है। मैं तो उसका मुनीम हूं। किसकी मजाल जो बिना इसकी मर्जी के उसका दैवी-द्रव्य ले लेवे" आ बात तो सेठ साहब कमसूं कम दिन में दस बार तो कह ही दिया करता हा। परमातमारी इसी कुदरत हुई कै अेक दिन सेठजी रै घर में चोर बड़ ग्या। सेठजी री नींद जागगी। चोरों कटारी सूं पेट चीरण री धमकी दी। सेठजी बोलिया 'क्यों? मारोगे? कुछ बात भी?' "बता धन" चोर बोलिया। सेठजी सगळी तिजोरियों री चाब्यों री गुच्छो वाँरै सामो वगाय[17] दियो। चोरों कयो "म्हे थांने मुसके बांधसां। मूंडो करसां बंध। तू रौळो करदे जद?" वै बोलिया "शंकर भगवान् की कसम। मैं न तो अभी और न बाद में चूं तक करूंगा। ले जावो। शंकर का माल है। मेरा क्या है।" चोरों, पाचा लिया। बडी २ पौडों बांध'र चैन सूं चालग्या। पण ओ कयां?

रातीन्दो[18] हुय गयो। पड़िया अठोने वठीने टंटोळा मारे। छेकड़ रोवता-भींकता सेठजी रा पग पकड़िया और माफी मांगी जद सूझण लाग्यो। पछे तो वे उठे ई नौकरी करण लाग ग्या।

वाँरै दान-खाने[19] सूं कदेई कोई खाली हाथ पाछो को जाँवतो ही नी। सारों रो सवाल पूरो करता हा। अेक वार पफ जिद्दी हूंठो जाय पड़्यो। बोल्यो 'बेटी रै वियां में ५००) रुपिया जोईजे।" सेठजी बोलिया "३००) में काम चलावो। मेरे खयाल से यह रकम पूरी है, कम नहीं है।" बो बोलियो "नहीं, इत्ता थोड़ा है, देवो तो पूरा देवो। नहीं जणे 'नक्क'रो, करदो।" सेठजी बोलिया "३००) से लेकर ३०००) रुपयों तक की चिट्ठियां डाल लो और फिर शंकर के नाम से आंख मूंद कर उठालो।" अेक वार, २ वार, ३ वार, ४ वार चिट्ठी काढी पण भाग हूं सागी ३००) री चिट्ठी निकळती गई। मुळक,र सेठजी बोल्या "क्यों! देखा! शंकर का ३००) का ही हुकम है न?" वो लजखाणो पड़ग्यो। अर रुपिया लेर रस्तो लियो।

एक बामण[20] रै कांई डोळ को हो नी। किणी अकल दी के सेठजी री बग्घी आगे लईस दाई दौड़ो। अेक दो वार इयां कियो; सेठजी रै निगे चढ्यो। "अरे भाई! तुम यह क्या करते हो?" कह'र सेठजी गाडी रुकवाई। वैने कने बैठा'र हाल पूछण लागा। सारी हकीगत सुण'र सेठजी बोलिया 'देवता! आपने मेरे पर बड़ा अपराध चढा दिया। शंकर! शंकर! ब्राह्मण और मेरो

१६ सवेरे १७ फैंक दिया १८ रतान्ध १६ दीवानखाना २० जीविका का साधन

Rajasthani in the form of Marwari can be heard all over India.

—डॉ० सर जी. अे. ग्रियर्सन।

राजस्थानी दो करोड़ जनता की भाषा है। उसका साहित्य भारतीय साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

—ठाकुर रामसिंह अेम. अे.,

मारवाड़ी-साहित्य में १८ दिशायें हैं जिनके नाम भिन्न २ हैं। उनके पर्याय अन्यत्र नहीं मिलते। यह उसकी व्यापकता के अनेक प्रमाणों में से एक है।

—(बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादनाधीन 'मारवाड़ का महत्त्व' नामक पुस्तक के 'मारवाड़ी-भाषा की व्यापकता और उसका सर्वाङ्गीण साहित्यिक महत्त्व' शीर्षक निबन्ध में से)

मारवाड़ी-भाषा का वास्तविक अध्ययन अधूरा है। उसका साहित्य वास्तव में अधिक व्यापक है। साकरिया द्वारा प्रस्तुत कियेगये शब्दों के पर्याय मेरे 'हिंदी शब्द-सागर कोष' में नहीं मिलते।

—रा. बा. डॉ. श्यामसुंदरदास।

(सन् १६३६ में कलकत्ता से लौटते हुये काशी में कीगई हिंदी और राजस्थानी भाषा की चर्चा के दौरान में)

राजस्थानी कहावतां नै मुहावरा

(गतांक से आगे)

[चौधरी शिवसिंह चोयल]

६०—हरमेलां में धूड़ पड़ै नै भायेलां में मारा।

६१—सासू सुखी ही सड़ै, फेर आला ही बळै।

६२—सासू मरियां साळ भागो, ऊठो बहु काम लागो।

६३—माड्यों री मीढ भायेलों सूं नहीं भागै।

६४—तिल चाली नै अफीण आली।

६५—छोरू नै ढोरू चालै डैडे हेवा।

६६—वेळा रा वाया मोती नीपजै।

६७—लुगायां नरों री खान है।

६८—कूड़ काया रो कौगाल़ है

६९—मरदां नै खोया जरदे, बळदां खोदी मार। घर नै घोयो झगड़ा नै घरू-मसदगी मार

७०—मा नै मा-रो-जायो। देसदलो सब परायो।

७१—सुमत कुमत दोय बहनां है।

७२—मत फिरगी लोगों री।

७३—मूठी माटी देवण दो।

७४—मूंडो दीखे बापदा रो!

७५—कूंडका दीठ रपियो।

७६—मूंडा में मूंग डर दिया हा कांई?

७७—मिजरां रा मेळा है।

७८—मिजर काण गई।

७९—बाठो मद बाखो।

८०—भूखा घर री लाबळी, धापियोड़ा घर री नहीं लापसी।

८१—ठिकाणा रो माटो बिगड़तो बिगड़ै।

८२—बिगड़ नै बांदरो होगयो।

८३—बिना लोटर रो।

८४—मूंडा देखे टीका काढै।

८५—राज, राजा नै बाप करै।

८६—राज रो मांटी।

८७—मोटी काई है रे।

८८—मांटीपणो कोयनी रयो ।

८९—आखिर माटी में मिळ जावणो है ।

९०—नाम मोटा नै दरसण खोटा ।

९१—किणी बात री मार खोटी ।

९२—रोवणा रूंढा रो ।

९३—आपरो घर सौ कोसां ही साथे है ।

९४—पीळा पोतड़ां परणाय दीधो ।

९५—करणा है सो करलो भाई, काळा केसां आई ।

९६—पुन री जड़ पियाळ में है ।

९७—अन्न ज्यांरा पुन्न ।

९८—अन्नजी रा बाजा नै अन्नजी रा ही गाजा ।

९९—आखिर राम तो एक है ।

१००—गरीब रो बेली राम ही कोयनी ।

१०१—गरीब री हाय खोटी है ।

१०२—खोटी मत करो, म्हारे काम है, जावण दो ।

१०३—ऊगै सो आथमैं, जनमे सो मर जाय ।

१०४—मरियां ही मेहतो है ।

१०५—बाहूड़ां री आस करो ।

१०६—गोडा हालै जितरै कमाय खावो ।

१०७—किणी गरीब नै गोडा मत दीजो ।

१०८—घर में सळ नहीं है, फिर क्यूं खर्च करो ?

१०९—आय लारै उपाय है ।

११०—दशा लारै देव है ।

१११—दशा खोटी आई है ।

११२—ऊखरड़ी में रतन जनमे ।

११३—बेटी ऊखरड़ी रो खोटो है ।

११४—बेटा बांवळियां री बाड़ है ।

११५—घर लुंगायां रा है ।

११६—खाय नै मगरो होगयो ।

११७—ऐड़ो कांई लोह वाढियो ।

११८—राज रा कोठार कुण भरिया !

११९—राज मा बाप है ।

१२०—राजा सामै जकाई रांडी ।

१२१—नौकर री छाया कैर री ही भली । बिना मोके बदलो ही चोखो नहीं ।

१२२—मोटा संगत नै क्यूं पाळो ?
१२३—धान री किरची।
१२४—मान रखा के नाव।
१२५—मिजाज सूं भारियां मरै।
१२६—नीले हालतां कांई कर।
१२७—नील छोड दो।
१२८—नैंणो मत भूलजो।
१२९—नैंणो हो गयो कांई ?
१३०—नोट-गूगरी कर रुपिया खागया।
१३१—पूंजी मत करो, मांग ने लेलीजो।
१३२—गई भूख नै हेला मारे है।
१३३—नया घरां रा है।
१३४—परवारियोड़ा पूत है।
१३५—आज मूंडो देखीजे है ला।
१३६—अबै तो मोटा बां ही भूख भाग गई है।
१३७—मोटा बोल रामजी नै छाजे।
१३८—भेद बिना चोरी नहीं।
१३९—बाबा फाटो फाती जाने। करम फूट्यां पारी नहीं लागे।
१४०—थोरा सूं पारी जाणी तो बताओ नीं ?
१४१—राह बाहेरो राईको है नाद बाहेरो दर।
१४२—हथां साथे जावो तो दो पग पोटा पड़ोला।
१४३—पोरी सात मत काटजो।
१४४—गोळी वाली चोट हो गई !
१४५—हूंटो मथके हुलाया है घो कांई कर दियो।
१४६—होका मत दोजो किणी गरीब रै।
१४७—राम है पिछाण है है दोनों।
१४८—मिनखपणा मैं समझता हा !
१४९—माजनो कोडी रो कर दियो।
१५०—शान मैं लागो हुवा है का ?
१५१—गोला मत काढ़जो, थूं थरै सावाड़ेला।
१५२—हो ब्याही नै एक लोही।
१५३—बिलिया बिसर गया।
१५४—चोर हुए गया।
१५५—हथां रै हमनां लोग है।

१५६—एकला दोकला रो थाग ही नहीं लागै ।
१५७—रांमजी किनैई एकलो मत करजो ।
१५८—नर नारी रो जोड़ो है ।
१५९—जाया नै जाया होतां काई जेज !
१६०—जाया ज्यांरा पूत, नै फाविया ज्यांरा सूत !
१६१—क्रियी में जाळ मत करजो ।
१६२—कीड़ी संचे तीतर खाय, पापी रो धन परळै जाय
१६३—आज उणारा दिनमांन घरे है ।
१६४—उणारै घिरया रो आंको नहीं आयो ।
१६५—दीयासूळो व्है ज्यूं कांई करै ?
१६६—आज उणारो घर भरियो तरियो है ।
१६७—आपरी माखी उडावे है लाई ।
१६८—लाई नै क्यूं दुख देवो ?
१६९—लाई-रौंड रो ।
१७०—मैं किसो लारवाळ आयोड़ो हूँ ।
१७१—ओळ मत छोड़जो ।
१७२—अबै ओ'ला क्यूं लेवो हो ?
१७३—ओछी मत बाढो ।
१७४—भीतर भाग गया ।
१७५—अबै तो ओछी दौंई में आगया हो ।
१७६—जाव री बेटी चंडाळ बाजै ।
१७७—रहतां रा घर, नै जातां रा मारग ।
१७८—जाट री बेटी नै जीसा नाम ।
१७९—मिनखां रो खाटो दोहरो चूीजै है सा ।
१८०—मिनखां में पांती राखणी है ।
१८१—मा-जायो नै घरे आयो बराबर ।
१८२—खावया नै तो डाकी पढ़ियो है ।
१८३—आहरै कोसां लापसी, नै सौ कोसों सीरो ।
कठैई नहीं छोडियो, म्हारी नणदल-ई रो वीरो ॥
१८४—हाल डाढ हेटे कांकरो कोयनी आयो है ।
१८५—गाबां फाटां तो गरीबी आई, जूता फाटां कांई जोरावरी आवेला ?
१८६—नशो नाम अन्न रो है ।
१८७—देवता किणारो दोह करे ।
१८८—देवता तो वासना रा भूखा है ।

१८९—मांगियां बिना तो मा ई बोबो नहीं देवे।

१९०—लाख रुपियों री जबान है।

१९१—जबानां रा साचा छट गया।

१९२—मौत सूं मरणो नै भाव सूं बिकणो।

१९३—मोसा खायां रो सोच नहीं, को'ठै खाया चाहिजै।

१९४—लुगाई री अकल एडी कानै।

१९५—घर दिवै घाट चोखी।

१९६—बैरी नै पैंडो तो काढ्योड़ो इज भलो।

१९७—आप ही रोटी लेय नै खाय लेवे ऐडो गिनायत चाहिजै।

१९८—कमायो खाधो नै पढियो लाधो।

१९९—चांम व्हालो, चांम व्हालो कोनी।

२००—दीगळिया घाल दिया।

२०१—सौदा रो टापरो है।

२०२—दाढ मांहि खाधी कै?

२०३—ढूकलो नांकनै राजी करो परो।

२०४—दुरदेव कुत्ता गरीबां नै लूटै है।

२०५—सीठी साळ है।

२०६—सीधा बोलो लोगदो नै खारा बोलो मायदी।

२०७—नेव्हरा मत लिगाओ।

२०८—पहोंच-बारटो है।

२०९—पांतर गयो हूँ सा, माफ करो।

२१०—सब दूकान में पाणी री मा चाहिजै।

२११—दुबकी में गुड़ मत नाखो।

२१२—दीखाव मत करजो।

२१३—हांडी आपरी टाकणी दे दिल संसार कारी कांई दे।

२१४—चोर कुई माल्दार ठिगा दीखिया?

२१५—पर्दा साता जारै जसा है।

२१६—मन नै लोहन जाल्हां बाळो लागा है।

२१७—सौ वेळा चोर री, एक वेळा धराकरी री।

२१८—हुंदगो रोवे एक बार, हुंदगो रोवे बार बार।

२१९—किसरी मा अजलो खायो है?

२२०—ऐसा कांई काला काटा लाहिया?

२२१—मन री मन में ही रह गई।

२२२—मन री मौज है सा।

२२३—मन रो मैलो है।

२२४—काया माथे क्यूं भारा बांधै है ?

२२५—झूठ काया रो खोगाल़ है।

समालोचना

कळायण

रचयिता—नानूराम संस्कर्ता, प्रस्तावना-लेखक—प्रो० श्री नरोत्तमदासजी स्वामी एम० ए०, विद्यामहोदधि। प्रकाशक—श्री सादूळ राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट बीकानेर, पृ० सं० २८+१२२ मूल्य ३॥)

श्री सादूळ राजस्थानी रिसर्च-इंस्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशित अभिनव राजस्थानी ग्रंथमाळा की प्रथमपुस्तक 'कळायण' के लेखक को प्रथम प्रयास में ही पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। 'ऊमस ओग' सर्ग में प्रकृति की कठोरता का कैसा कड़ा वर्णन किया गया है जिसे कवि के शब्दों में ही पढ़ियेगा। भूमि मोम की तरह सूर्यताप से गल रही है, हरिणों की आँखों के आगे प्यास और ताप के मारे काच फिर गये हैं। वृक्षों पर सुवटे बिलखे मनमारे बैठे हैं। बालकों के माताओं की गोद में रहते हुए भी आंखों से आश्रुधारा बह रही है। बूढे बडेरे खाटों पर पड़े बेचैनी से करवटें बदल रहे हैं। प्यासे और तपत से तड़पते हुए कुत्ते गली २ मारे मारे फिर रहे हैं। मानवों के मुखड़े मलीन हैं। सारांश, मरुधरा ग्रीष्म के आतप से तप्त और त्रसित है—

खाट तपै, राली तपै, तन तप-तप तांभै।
भीजै पूर पसेव सूं, मन ऊळ-ऊळ खीभै॥

आगे 'बीजळ-देळी' सर्ग में वर्षा होचुकने पर मरुभूमि का सारा दुखदर्द मिटकर प्रकृति की प्रसन्नता का यह साक्षात स्वरूप—लहराते हुए खेत, हरी भरी रोही, पक्षियों का कलरव, पशुओं की उछलकूद—ये सब मानव हृदयों में फूटे पड़ रहे हैं। बूढे भी प्रकृति के इस तारतम्य पर रीझकर नाच उठते हैं।

पुस्तक की भाषा बड़ी ही स्वाभाविक, मधुर और अलंकारिक है। स्थान २ पर अलंकार में नगीनों की तरह मुहावरे और कहावतें जगमगा रही हैं। प्रकृति और मानव का जैसा संश्लिष्ट वर्णन इस पुस्तक में हो पाया है वैसा अन्यत्र विरली ही पुस्तकों में देखने को मिल सकेगा।

पुस्तक के अंत में राजस्थानी शब्दों के अर्थ और विविध स्थलों पर विशेष शब्दों की व्याख्या भी दी गई है।

मैं कवि को उसकी सफलता पर सप्रेम बधाई देता हूं और आशा करता हूं 'कलायण' लोकप्रिय होने के साथ साथ राजस्थानी साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त कर सकेगी।

—मुरलीधर व्यास

गीतकथा

रचयिता—श्री मनोहर शर्मा, एम० ए०, प्रकाशक—श्रीपूरनमल शर्मा, बिसाऊ (जयपुर) पृष्ठ ६८ मूल्य ११)

'गीतकथा' वीररस प्रधान रचना है। इसमें उन महान् आत्माओं का ओजस्वी भाषा में वर्णन है जो हँसते हँसते धर्म और वचन की आन पर अपने प्राणों की आहुति देकर इस राजस्थान को 'वीरभूमि' बनाकर अपनी अमर यश-पताका फहरा गये। आज राजस्थान में वे देवताओं की तरह पूजे जाते हैं।

'गीतकथा' की भाषा सुगम, सरस, अलंकारयुक्त और मुहावरेदार है, फिर भी ओज कहीं नष्ट नहीं होने पाया है। शैली सुन्दर है। ऐसी रचनाएं राजस्थानी साहित्य में उचित सम्मान प्राप्त कर सकेंगी और वहां के निवासियों में नवीन उत्साह तथा नवीन जोश भरकर उन्हें कर्त्तव्य-परायणता के पथ पर लेजाने में समर्थ हो सकेंगी।

लेखक अपने प्रयास में सफल हुए हैं जिसके लिये हमारी ओर से उनको बधाई है। आशा है भविष्य में वे ऐसी ही अनेकों प्राणोत्पादिनी रचनाओं से मां राजस्थानी का पवित्र अंचल भर देंगे।

—मुरलीधर व्यास

राजस्थानी कहावतां

सम्पादक—प्रोफेसर श्री नरोत्तमदास स्वामी एम०ए०, विद्यामहोदधि और पंडित श्री मुरलीधर व्यास विशारद। भूमिका— लेखक—कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषातत्त्वाध्यापक भाषाचार्य साहित्य-वाचस्पति डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एम०ए०, (कलकत्ता) डी०लिट्० (लंदन) एफ०आर०ए० एस-बी०,। आकार—रॉयल अठपेजी। पृष्ठसंख्या १६+२०८, कहावतें १३५५, आंख सम्बन्धी मुहावरे १४०, प्रथमावृत्ति। वि० सं० २००७, मूल्य ३), प्रकाशक—श्रीभँवरलाल नाहटा प्र० मंत्री, राजस्थानी-साहित्य परिषद् कलकत्ता, नं० ४ जगमोहन मल्लिक लेन। परिषद् की ओर से प्रकाशित होने वाली राजस्थानी-ग्रन्थमाला का दूसरा पुष्प।

श्री स्वामीजी एवं व्यासजी राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध जन्मसिद्ध सेवक हैं। स्वामीजी द्वारा सम्पादित राजस्थानी साहित्य का कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं जिसमें आपकी और आपके सहयोगियों की एक अनवरत साहित्य

साधना के दर्शन न होते हों। राजस्थानी कहावतों का यह संकलन भी इस नियम का अपवाद नहीं। पुस्तक के प्रारम्भ में कहावत-साहित्य के आन्तरिक रहस्य को प्रकाशित करने वाली श्री स्वामीजी की अवतरणिका एवं विद्वत्प्रवर श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की भूमिका, कहावत सम्बन्धी दो परम उत्कृष्ट निबन्धों के रूप में सदा स्मरणीय रहेंगीं।

कहावतें वे संक्षिप्त नीति-सूत्र हैं जिनमें मानव-जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति का एक परम आकर्षक सार निहित रहता है। जिस प्रान्त का यह अनुभव जितना ही अधिक विस्तृत होता है उस प्रांत की कहावतें उतनी ही बहुमुखी होती चली जाती हैं। राजस्थान की यह विशेषता है कि इसके निवासियों का अनुभव किसी एकही क्षेत्र में सीमित नहीं। हजारों वर्षों से नाना राज्यों के दरबारों एवं नाना देशों के सैनिक तथा आर्थिक सम्पर्कों के कारण इस प्रदेश की अनुभूति—बहुश्रुति और बहुदर्शिता से सम्पन्न है। यही कारण है कि जहां एक ओर इसकी कहावतों में सर्वथा एक स्वाभाविक ग्रामीणता और स्पष्टता के दर्शन होते हैं वहाँ दूसरी ओर वे नीति, दर्शन, नाना शास्त्रमन्थन, व्यवहार-नैपुण्य एवं रसिकता से पद पद पर परिपूर्ण हैं। जीवन के जिन सिद्धान्तों पर राजस्थान की जीवनगति आज तक अग्रसर होती रही है उनका जो एकत्र अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिये राजस्थानी कहावतों का यह सुन्दर संग्रह परम-उपादेय सिद्ध होगा। संग्रह के अन्त में आँख सम्बन्धी राजस्थानी मुहावरों का संकलन भी परम मनोहर है। राजस्थानी साहित्य के गौरव और माधुर्य को प्रकाशित करने वाली इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये इसके सम्पादक एवं प्रकाशक दोनों ही कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं।

—विद्याधर शास्त्री एम०ए०,

पावती—धन्यवाद रे साथ अंगीकार—

१. किष्कान्ड रामायण २. नारायण पिंगल ... ३. जग मरसिया	भेजणवाळा:—ग्रन्थकर्त्ता श्री नारायणसिंह कळिया। कळियां रो बास, हाथीराम रो ओडो, जोधपुर।